प्रस्थिति 3

[राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों का कहानी-संग्रह]

सम्पादक
गुरइकबालसिंह : प्रेम सक्सेना

शिक्षा विभाग राजस्थान के लिए
राजस्थान प्रकाशन
त्रिपोलिया बाजार,
जयपुर-2

आमुख

शिक्षक-दिवस शिक्षकों के सम्मान का पुनीत दिवस है। शिक्षक का कार्य ही ऐसा है कि वह हर क्षण स्वतः सम्मानित है। किन्तु, उसके सम्मान में इस दिवस का आयोजन कर राष्ट्र-निर्माण में शिक्षक की भूमिका के महत्व को अधिक व्यापक रूप में स्वीकृत किया जाता है।

प्राथमिक एवं माध्यमिक, शिक्षा विभाग राजस्थान,की चेष्टा रही है कि शिक्षकों का साहित्यिक कृतित्व प्रकाश में आये। इसी दृष्टि से प्रत्येक शिक्षक दिवस पर विभाग राजस्थान के सृजनशील शिक्षकों की साहित्यिक कृतियों के संकलन १६६७ से ही प्रकाशित करता चला आ रहा है। अब तक हिन्दी, उर्दू और राजस्थानी की कुल मिलाकर १८ पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी है। प्रसन्नता की बात है कि भारत भर में अनूठी इस योजना का सर्वत्र स्वागत हुआ है तथा साहित्यिक अभिरुचि के शिक्षकों को आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली है।

आशा है कि शिक्षक दिवस १९७१ पर प्रकाशित इन पुस्तकों (प्रस्तुति-३ प्रस्थिति-३ तथा सन्निवेश-४) का सर्वत्र स्वागत होगा।

राजस्थान के प्रकाशकों ने इस योजना में आरम्भ से ही पूरा-पूरा सहयोग प्रदान किया है और इन प्रकाशनों को सुन्दर बनाने में परिश्रम किया है। इसी प्रकार शिक्षक लेखकों ने भी अपनी रचनाएं भेज कर विभाग को सहयोग प्रदान किया है। इसके लिए लेखक तथा प्रकाशक दोनों ही धन्यवाद के अधिकारी हैं।

लक्ष्मीनारायण गुप्ता,
निदेशक,
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा,
राजस्थान, बीकानेर

शिक्षक दिवस, १९७१

प्राक्कथन

शिक्षा विभाग द्वारा राजस्थान के साहित्यिक अभिरुचि शिक्षकों की रचनाओं के संकलन-प्रकाशन का पांचवां वर्ष है। शिक्षकों की सम्पूर्ण कृतियों के अतिरिक्त ऐसे कुल १२ संकलन प्रकाशित हो चुके हैं—प्रस्तुति (कविता संग्रह) ३, प्रस्थिति (कहानी संग्रह) ३, सन्निवेश (विविध) ४, कैसे भूलूं (शिक्षक जीवन के महत्वपूर्ण क्षण) २।

साहित्यिक प्रतिभा सम्पन्न शिक्षकों को प्रकाशन सुविधा निरन्तर उपलब्ध कराते रहने की दृष्टि से इस योजना का जहां सर्वत्र स्वागत हुआ है वहीं समालोचकों ने बार-बार स्तरहीनता की बात कही है। समालोचकों का यह आक्षेप उनकी दृष्टि से सही हो सकता है क्योंकि शायद, वे इन पुस्तकों में संकलित रचनाओं को समालोचना के नवीनतम मानकों और साहित्य सृजन की नवीनतम उपलब्धियों की पृष्ठभूमि में आंकते हैं, जो अनुचित भी नहीं कहा जा सकता। पर यह भी सही है कि उन्हें संकलनों में ऐसा भी कुछ चाहे वह बहुत कम ही क्यों न रहा हो, मिला है जिसे उन्होंने सराहा है।

समालोचकों की पैनी आलोचना का ही शायद यह सुफल है कि संकलन के लेखक निरन्तर स्तर वृद्धि की ओर प्रयत्नशील रहे हैं। प्रकाशनार्थ आने वाली रचनाओं की बहुलता शिक्षकों के उत्साह की ही द्योतक नहीं है, उनके वास्तविक सृजन-धर्मा बनने के प्रयास का भी द्योतक है। उनका यह प्रयास किसी एक विधा या प्रवृत्ति से बंधकर चलने का नहीं है। साहित्य के आन्दोलनों के प्रवक्ता या भोक्ता भी नहीं हैं ये लोग। साहित्यिक व्यावसायिकता की प्रतिबद्धता भी इनमें नहीं है। इसीलिये पत्र-पत्रिकाओं की मांग पूर्ति हेतु उत्पादित रचनायें लिखने के आदी भी नहीं हैं ये लेखक। जो अनुभूत होता है उसे अभिव्यक्त कर देते हैं बस, बिना इस बात की चिन्ता किये कि उनकी अभिव्यक्ति कितनी टकसाली बन पड़ेगी या बाजार में उसकी क्या कीमत होगी।

इसमें कोई दो राय नहीं कि किसी प्रवृत्ति या आन्दोलन विशेष से बंधे न होने के कारण इनका अनुभव-क्षेत्र व्यापक है और रचनाओं में वैविध्य। एक नागर भले ही नगरीय जीवन की विषाक्त स्थिति से संत्रस्त होने के फलस्वरूप जीवन को निस्सार और बोझिल समझ उससे 'कटाव' की स्थिति महसूस करने लगे किन्तु एक अध्यापक जो हरक्षण देश के भावी कर्णधारों के 'स्व' के विकसित होने में सहयोग कर रहा है, जीवन के प्रति ऐसा हताश दृष्टिकोण चाहकर भी नहीं अपना सकता। आप चाहें तो इसे थोपा हुआ आदर्श कह लें, किन्तु वस्तुस्थिति यही है। अध्यापक असन्तुष्ट है, समाज में उसका उतना सम्मान नहीं है, आर्थिक तङ्गी का शिकार भी वह होता है, अन्य वर्गों की उपेक्षा भी उसे सहनी पड़ती है, जीवनयापन की सुविधायें भी कम उपलब्ध होती हैं—यह सब ठीक है। अन्य नामवर या व्यवसायी लेखकों के साथ भी यह सब होता है या हो सकता है। किन्तु, फिर भी, अध्यापकों में जीवन के प्रति 'नकार' की भावना न पनपकर 'सकार' की प्रवृत्ति ही विकसित होती है। दूसरे, उनका सम्पर्क सूत्र इतना विस्तृत है कि उनका अनुभव स्वतः विविध आयामों को अपने में समेट लेता है।

इस पृष्ठ भूमि में इन संकलनों को देखें तो इनमें अनुभव-वैविध्य है, अनुभवों की वह जमीन है जो साहित्यिक दृष्टि से कम महत्वपूर्ण नहीं मानी जानी चाहिये, सम्भव है ये अनुभव साहित्य की किसी भावी प्रवृत्ति के निर्माण का आधार बनें।

अनुक्रम

—:o:—

1

नीलकंठी

●

डॉ० राजानंद

उसे शरणार्थियों के कैम्प मे से हटाकर सिविल हॉस्पिटल में ले आया गया है।

सुहामिनी—यही उसका नाम है।

वह हर वक्त पत्थर-सी खामोश रहती है। उसकी इस हालत ने डाक्टरों को पशोपेश मे डाल रखा है।

जो उसे अपने साथ ले आये थे, उनमें एक घोषाल बाबू थे, दूसरा परिवार इब्राहीम मलिक का था।

उससे पूछा था—आप पास के शहर वाले अस्पताल मे चलियेगा?

वह पूछने वाले डॉक्टर को थोडी देर तक ठहरी हुई दृष्टि से देखती रही थी—जैसे कुछ सोच रही हो। फिर गरदन हिलादी थी—नहीं।

बूढे घोषाल बाबू ने कहा था—डॉक्टर साहब, यह अभी नहीं जा सकेगी। बेचारी को हमारे साथ रहने दीजिये।

बैठकर वह उसकी पीठ और काले-काले खुले हुए लम्बे बालों पर हाथ फेरने लगी थी। उसकी आँखें भर आई थीं जिनके पानी को उसने ओढ़नी के खूट से सोख लिया था। सुहासिनी वैसी-की-वैसी काठ-सी-बैठी रही थी।

'शी कान्ट सरवाइव अनलेस शी इज़ मेड टु स्पीक' डॉक्टर आपस में कहते हुए आगे बढ़ गये थे।

घोषाल बाबू उसे बेटी, बेटी कहकर बुलवाने की कोशिश करते, लेकिन उस पर कोई असर नहीं होता।

वह ज्यादातर अपने तम्बू में रहती जैसे बाहर से दहशत खाती हो।

रिहाना बेगम—इब्राहीम मलिक की पत्नी—जब-तब, काफी देर तक उसे बहला-फुसला कर घुमाने ले जाती। वह उनके साथ चली जाती, और दूसरे शरणार्थियों को निर्भाव-से देखती हुई लौट आती।

उसके बारे में सुनकर दो प्रेस रिपोर्टर खास तौर से उसको देखने आये थे। एक ने उसकी फोटो खींचली थी, वह तब भी जैसी बैठी थी, वैसी बैठी रही। उन्होंने कई तरह के सवाल किये थे कि वह किसी भी तरह से चोट खाये, या खुश हो; हँसे या रोये और बोल पड़े। लेकिन वे सफल नहीं हुए।

सुहासिनी उनकी तरफ ठहरी हुई नजर से देखती रही, फिर उसने गरदन झुकाली थी और जमीन की तरफ देखने लगी थी। उंगली से जमीन पर कट्टे के निशान खींचने लगी थी। इब्राहीम मलिक को कहना पड़ा था—यह नहीं बोलेगी भाई जान, सदमा इसे लग गया।

इब्राहीम ने उन रिपोर्टरों को बताया—फौजी दरिंदों ने इसके आदमी को इसकी आँखों के सामने गोली से मार डाला। इसके दो साल के [illegible] को कत्ल कर दिया। और इसकी अस्मत बलवाइयों ने लूट ली। काश; [illegible] भी इस दुनिया का भी खुदा होगा। मुझे शक है!

उसने बहुत सारा थूक, जमीन पर थूक दिया।

सुहासिनी—पच्चीस-छब्बीस की मखमल की गुड़िया। सूरज मुखी के फूल-सा रङ्ग। बेदाग शीशे के गुल दस्ते-सी खूब सूरत। सहमी हुई नीलकंठी।

डॉक्टरों ने एक बार फिर दस-बारह दिन निकाल कर कोशिश की कि वह सिविल हॉस्पिटल जाने को तैयार हो जाये।

वह जिस भी सफेद पोश नौजवान को देखती, उसकी नजर उस पर ठहर जाती। वह स्थिर दृष्टि से देखती रहती, फिर गरदन झुका लेती और जमीन को देखने लगती। अपनी उंगली से जमीन पर गड्ढा खोदने लगती।

वह क्या सोचती थी? उसके दिमाग में कौनसी यादें तस्वीर बनकर उभरती-डूबती थीं? वह क्या पाना चाहती थी ठहरी नजर की टोह से?

घोपाल बाबू ने डाक्टर को बताया था—मैं उसका पिता नहीं हूँ डॉक्टर! वह हमारे मोहल्ले में ही रहती थी। प्रोफेसर सुब्रत इसके पति थे। वह खुद भी इङ्गलैंड में पढ़ी है। सब था, अब कुछ नहीं है। घोपाल बाबू बताते-बताते डबडबा उठे थे। उनके दांत निचले होंठ को दबाने लगे थे। गरदन इधर-उधर बेचैनी से हिली थी और आंसू टप-टप गिरने लगे थे।

डॉक्टर साहब, यह देखिये—घोपाल बाबू ने अपने कुर्ते को दोनों हाथों से पकड़ कर ऊपर उठा लिया था, और जैसे उसके पर्दे के पीछे से बोले थे—देखिये पसलियों पर खिंचे हुए दो खांचे! मैंने अपनी दो बेटियों को बचाना चाहा था। वह राक्षस दोनों को ले गये। डॉक्टर साहब! मैंने जान की बाजी लगाकर उनको पकड़ना चाहा, उन्होंने बन्दूक के कुन्दे से मेरा सिर फोड़ दिया। मैं बेहोश होकर गिर पड़ा।

घोपाल बाबू की सांस रुककर 'फू' से बाहर निकली थी और उसी के साथ उनके मुँह से निकला था—मगर मौत चाहने पर थोड़े ही आती है।

लेकिन घोपाल बाबू जब भी इस तरह की बात इब्राहीम मलिक से करते, वह जवाब देता—घोपाल बाबू! खुदा सब देखता है। उनके बन्दों

को सताने वाला गड़-गड़कर मरना है। मरकर दोज़ख में नरमों की तरह पेला जाता है।

घोषाल बाबू एक खास और मुदक अन्दाज में मुस्करा देते। जैसे, वह हर तरह की आस्था, एतकाद और गलत फहमियों का मखौल उड़ा रहे हों।

घोषाल बाबू के समझाने—बुझाने पर सुहासिनी ने बहुत दिन बाद 'हाँ' की गरदन हिलाई। वह तैयार थी सिविल हॉस्पिटल जाने को।

घोषाल बाबू को उसके साथ हर वक्त रहना पड़ा।

सुहासिनी का इलाज शुरू कर दिया गया है। उसके एलेक्ट्रिक शोक लगते हैं। उसे बेहोश करके बुलवाया जाता है।

वह कभी कहती है—मुझे भेड़िये उठाये लिये जा रहे हैं। कभी कहती है—गिद्ध मेरा मांस नोच रहे हैं।

कभी बुदबुदाती है—बचाओ! उन्हें बचाओ! वह उन्हें मार डालेंगे। वह पापी मेरी माग उजाड़ देंगे।

कभी चीखती है—मेरा बाबू! मेरा मुन्ना! मेरा बाबू!!

दवा का असर खत्म हो जाने के बाद जब वह होश में आती है तब फिर पहले की तरह खामोश हो जाती है।

उसके चेहरे पर समन्दर का अथाह 'दर्द' है जो उसके पीले रङ्ग से हम जोली हो गया है। आँखों में एक बियाबान सूनेपन है जो कभी-कभी 'हू-हू' कर उठता है। जो डॉक्टर तक को दहला देता है।

पर वह बोलती नहीं। वह कतई नहीं बोलती!

घोषाल बाबू उसे देखते रहते हैं। देखते चले जाते हैं। फिर उनकी आँखें डबडबा उठती हैं। फिर उनके निचले होंठ को दांत चबाने लगते हैं। फिर बेचैनी से उनकी गरदन इधर-उधर हिलने लगती है। फिर उनकी आंखों से टप-टप आंसू गिरने लगते हैं।

जैसे वह हर तरह की आस्थाओं, हर तरह के एतक़ाद और गलत फ़हमियों का बेरहमी से मखौल उड़ा रहे हों।

राजानन्द
शङ्कर क्वार्टर्स, सत्यनारायण चौक,
बीकानेर।

2

मायूस चेहरा

●

श्री कृष्ण बिश्नोई

"चाचा आए । चाचा आए । आज चाचा की छुट्टी । चाचा कहानी सुनाएंगे" । आज १५ अगस्त है । बच्चे पीछे पड़े हैं, 'हम कहानी सुनेंगे।' 'अच्छा भाई सुनो ।'

तुमने सुना है, बारह वर्ष के बाद घूरे के भी दिन बदलते हैं । बदलते होंगे हम तो नहीं मानते ।

एक था जनहरिदास । बेचारा उमर भर सन्तान का मुंह देखने को तड़फता रहा । वह भूखा-प्यासा हर मन्दिर-तीर्थ में भटका । भैरूँ-भोपे मनाये । बकरे की क्या कहूं, भैंसे तक बलि चढ़ाये । अन्त में एक लंगोटीधारी बाबा के आशीर्वाद से उसके घर एक पुत्री ने जन्म लिया । हमने बतलाया न कि जनहरिदास की कुण्डली में सुख का खाना ही खाली था ।

पुत्री जन्मी । वह बालिका इतनी अधिक सुन्दर और मासूम थी कि उसके सौन्दर्य की चर्चा फैलते-फैलते आस-पास के तमाम गावों को पार कर पहाड़ों तक पहुँच गई । उन्हीं पहाड़ों से घिरा एक गाँव था, जिसमें जकड़सिंह रहता था । जकड़सिंह के कानों में जैसे ही उस सुन्दर कन्या की बात पहुँची उसने कुछ देर तक सोचा । एक भिखारी का वेष बनाया । एक बड़ा सा पिटारा तैयार किया । एक सन्ध्या को जनहरिदास के घर पहुँच गया । जनहरिदास

ने उसकी बड़ी आवभगत की। उसे अपने घर ठहराया। जकड़सिंह ने अपनी बातों में जनहरिदास को इतना उलझाया कि वह सब कुछ भूल कर जकड़सिंह की सेवा में लग गया। उधर मौका पाकर जकड़सिंह ने उस सुन्दर कन्या को अपने पिटारे में बन्द किया और चुप-चाप वहाँ से चंपत हो गया।

बेचारा जनहरिदास तब से लेकर आज तक-अपनी खोई बिटिया की खोज में भटक रहा है। दिशाहीन भटकन की पीड़ा से वह चूर-चूर होगया है। न रहने को मकान, न खाने को भोजन, न पहनने को वस्त्र। खाना-बदोश-भूखा-नंगा घूमता है। अपनी बिटिया की खोज में उसे भटकते हुए चौबीस वर्ष हो गये हैं।

अब उसे जकड़सिंह का गाँव मिल गया है। जब वह उस गाँव में पहुँचा, तो देखा कि सारा गाँव अंधेरे में डूबा हुआ है। किसी के घर चिराग नहीं जल रहा है। आश्चर्य यह हुआ कि—केवल एक ऊँचा महल असंख्य दीपकों से जगमगा रहा है। उसे गाँव वालों ने बतलाया कि—वह जकड़सिंह की हवेली है। जकड़सिंह हर वर्ष इसी दिन यह दीपों का त्यौहार मनाता है। इसी दिन उसने एक सुन्दर कन्या का हरण किया था। वह कन्या जकड़सिंह के लिए भाग्य लक्ष्मी सिद्ध हुई है।

जकड़सिंह पहले भी डाके डालता था। अब भी डाके ही डालता है। पहले वह चोर-डाकू कहलाता था। उसे एक मौत का भय घेरे रहता था। पकड़े जाने या मारे जाने का खतरा सदैव उसके सामने मंडराता रहता था। अब वह निश्चिंत है। यद्यपि उसने अनेकों डाके डाले हैं, हत्याएँ की हैं, लोगों को खुले आम लूटा है। काला बाजारी की है, परन्तु लोग उसकी जय बोलते हैं। वह निन्दनीय से पूजनीय बन गया है। पहले जहाँ वह एक कुटिया में रहता था, वह कुटिया अब महल बन गई है। आज के दिन तमाम गाँव वालों को आदेश है कि अपने घरों के तमाम दीपक घी से भर कर उसकी हवेली पर रखें। खुद के घरों में प्रकाश न करें उसके त्यौहार में शामिल हों, आयें-जायें अपने चेहरों पर मुस्कान बिखेरें, चाहे उनके घर अंधेरे में डूबे हों, चाहे उनके दिल में दुःख का दरिया उमड़ रहा हो।

जकड़सिंह इस दिन, अपनी भाग्य लक्ष्मी उस सुन्दर कन्या की पूजा करता है। गहनों से लादकर उसे सजाता है। जनता उसके सामने सिर झुकाती है। परन्तु वह कन्या कभी मुस्कराती नहीं, उसके चेहरे पर एक

काली छाया मंडराती रहती है। लगता है वह दुख की कैद है, मानवी से पत्थर बनती जा रही है स्नेह हीन-ममता हीन जनहरिदास को गाँव वालों की बात सुन कर यह विश्वास हो गया है कि वह सुन्दर कन्या उसी की बिटिया है। उसने गाँव वालों से अपनी लाडली पुत्री को छुड़वाने में मदद मांगी, परन्तु जकड़सिंह के भय से कोई भी उसकी मदद करने को तैयार न हुआ। वालों ने सबने जनहरिदास के प्रति सहानुभूति प्रकट की और वे चलते बने। बेचारा जनहरिदास उनका मुंह देखता रह गया।

सुनाओ बच्चो ! तुम जनहरिदास की क्या मदद करोगे ? बच्चे एक साथ चिल्लाये "हम जकड़सिंह की हवेली को आग लगा देंगे।" मैंने प्रश्न किया—और यदि उस आग में जनहरिदास की वह सुन्दर कन्या भी जल गई तब ?

बच्चे गम्भीर हो गये हैं, सोच रहे हैं, शायद उन्होंने आग लगाने का इरादा छोड़ दिया है। कोई अन्य तरीका ढूंढ़ रहे हैं, परन्तु वे उस कन्या को मुक्त कराने के लिए कटिबद्ध हैं। सोच रहे है कि वह तरीका क्या हो सकता है ? कि जनहरिदास की कन्या सही सलामत उसके घर लौट आये। गाँव वालों को अपने घर के चिराग न बुझाने पड़ें। यह एक सामूहिक प्रश्न है। आओ हम सब इसे झेलें—इससे कतराएं नहीं—इसका शुद्ध विकल्प पायें। जकड़सिंह की जकड़ तोड़ें।

कृष्ण विश्नोई
व० अ० श्री जैन उच्च माध्यमिक विद्यालय,
बीकानेर

3

भूख

सांवर दईया

वह कुर्सी पर बैठा है। उसने अपनी दोनों कुहनियां मेज पर टिका रखी हैं तथा चेहरा हथेलियों पर! वह बहुत गम्भीर नजर आ रहा है। वह अपनी गर्दन को हल्का-सा झटका देता है। फिर कलम उठाता है। वह मेज पर रखी आज की डाक में लौट कर आयी, अस्वीकृत कहानियों-कविताओं को देखता है। वह विक्षुब्ध हो उठता है। कुंठा का सैलाब घिर आता है। लेकिन वह कहीं पढ़ चुका है कि प्रकाश सदा ही अंधेरे पर विजयी होता आया है। चाहे जैसे भी 'कुछ' कर गुजरने का निश्चय करके वह फिर पन्ने रंगने बैठ जाता है। कुछ ही दिनों बाद मेज पर फिर उसके रंगे पन्नों का ढेर इकट्ठा हो जाता है। वह देश के हर कोने में अपने पन्ने भेज देता है। वह शीघ्र ही विख्यात होना चाहता है। लेकिन उसे लगता है कि पूर्व स्थापित लोग उसे तिल भर स्थान भी देने को तैयार नहीं हैं। फिर भी वह कई बार प्रयास करता है। उसे हर बार असफलता मिलती है। वह आक्रोश से भर जाता है। क्रुद्ध होकर पूर्व स्थापित लोगों को बेवकूफ का खिताब प्रदान करता है। वह अपने शब्द-कोश में से वजनदार गालियां और मुहावरे तलाश करने लगता है। वह शब्दों को नये अर्थ देता है। शब्दों पर चढ़ी रूढ़ अर्थों की कैंचुल उतार कर फेंकना चाहता है। वह खुलकर गालियां इस्तेमाल करता है। अगर इस देश में किसी सेठ ने गालियों का कारखाना खोल रखा होता तो वह अवश्य ही प्रमुख सलाहकार के पद हेतु आवेदन-पत्र भर देता। उसे विश्वास है कि वह अवश्य ही चयनित होगा। उस स्थाई पद पर वह आजीवन कार्य करने को तैयार है। मगर अफसोस कि ऐसी कोई छोटी-सी संस्था भी नहीं है, जहां उसे अपने हथकण्डे आजमाने का अवसर मिलता।

हर बार की तरह इस बार भी उसके रंगे हुए पन्ने सम्पादकं
अभिवादन व खेद-सहित वापस लौटा दिये हैं।

उसे लगता है कि वह पागल हो गया है और गली के शैतान बच्चे उसे प
मार रहे हैं। बच्चों के अभिभावक खड़े-खड़े तमाशा देख रहे हैं। समा
बुजुर्ग, जिन्होंने अब सफेद वस्त्र धारण कर लिये हैं, कह रहे हैं—बच्चू तुम्ह
यह हालत होनी थी। भूत को नकार, वर्तमान से लड़े बिना ही भविष्य क
चले थे। लो, अब अलापो प्रगति का फटीचर राग ! हुंह !

वह प्रतिशोध की आग में जलने लगता है। वह निर्णय लेता है कि ए
एक से गिन-गिन कर बदला लेगा। इन दिनों वह तैयार मुहावरेदार भाषा
अतिरिक्त सभी तरह के हथकण्डे इस्तेमाल करता है। पूर्वस्थापितों के बखि
उधेड़ता है। उसके साथ जी रही पीढ़ी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करती है
अचानक उसके हृदय में ईर्ष्या नंगी होकर नाचने लगती है। उसका साथ
लेखक एक व्यावसायिक साहित्यिक पत्रिका की राख सम्पादक को आक्रो
(गालियाँ) भरे पत्र में भेजता है। जब वह पत्र प्रतिक्रिया-सहित प्रकाशित होत
है, तब उसे लगता है कि चर्चित होने का एक सुनहरा अवसर खो दिया है
क्योंकि पिछले कई दिनों से उसके मस्तिष्क में यही विचार नक्सलवादियों की
तरह उछलकूद मचा रहा था। बस, आलस्य-वश वह अपना विचार क्रियान्वित
नहीं कर सका था। अन्यथा क्या मजाल कि उसका टट-पूंजिया सहयोगी लेखक
इस साहसिक कार्य का सेहरा अपने सिर बांध लेता। वह सौगन्ध खाता है कि
इस तरह के उच्च विचार अब वह गुप्त ही रखा करेगा।

वह योजनायें बनाता है। वह एक प्रेस खरीदने का विचार करता है।
प्रेस लगाने के बाद तुरन्त नौकरी छोड़ देने का निर्णय बहुत पहले ही ले चुका
है। क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि नौकरशाही शासन में उसकी प्रतिभा
का ह्रास हो रहा है। वह साधारण आदमी नहीं है। उसके पास एक बहुत
बड़ा मस्तिष्क है। राजनीति और साहित्य के गम्भीर विषयों के अतिरिक्त
काम-शास्त्र पर भी वह अच्छे भाषण दे सकता है। अनेक मौलिक विषयों पर
सोच सकता है। सेक्स की स्वतन्त्रता का समर्थन करता है। मगर वह स्वयं
नहीं चाहता था कि उसका मित्र उसकी पत्नी से हंसकर बातें करे। हालांकि
वह पेटीकोट जैसे विषय पर सशक्त कहानी बहुत समय से लिखने की सोच
रहा है।

हाँ, फिर प्रेस खरीदने के बाद एक द्विमासिक अथवा मासिक पत्रिका

निकालकर अपनी कहानियाँ-कविताएं प्रकाशित करना भी उसकी योजना में सम्मिलित है। व्यावसायिकता के विरुद्ध नारे लगाने के लिए एक स्थाई स्तम्भ जारी करके छद्म नाम से लिखने का विचार है। अपनी रचनाएं अस्वीकृत करके लौटाने वाले सम्पादकों को गालियाँ देकर उनकी पत्रिकाओं को कूड़ा सिद्ध करने वाले लेख उसने लिखकर तैयार कर लिए हैं। उसने आक्रोशी लेखकों की पूरी जमात ढूंढ ली है, जो उसे रुपये देकर अपनी रचनाएं छपवाने को तैयार हैं। धड़ल्ले से बिकने वाली पुस्तकों की पाण्डुलिपि वह आमन्त्रित कर चुका है। वह इस निष्कर्ष पर पहुंच चुका है कि इस युग में कोई भी व्यक्ति साहित्य पढ़ना पसन्द नहीं करता है। सब अपनी जिन्दगी से बोर हैं। किसी को फुर्सत नहीं कि गम्भीर साहित्य से माथा-पच्ची करे। वह अच्छी तरह जानता है कि समझदार व्यक्ति सिर-दर्द मोल नहीं लेते हैं। इसलिए वह फड़कती हुई चीजें देगा जिसे पढ़कर बोर लोग शोर और मरीज 'डांस' करने लगेंगे। वह सबसे पहले 'उमा शर्मीली' के नाम से 'चमकीली रातें' से लेकर 'कोबरा उर्फ नागिनों का आगन' तक की पूरी सीरीज प्रकाशित करेगा। फिर जब खूब पैसा इकट्ठा हो जावेगा तब वह एक पत्रिका और निकालेगा। वह पत्रिका शुद्ध साहित्यिक होगी।

अपनी योजनाएं दोहराने के बाद वह एक बार फिर अस्वीकृत रचनाओं पर दृष्टि डालता है। अपने 'साहित्यिक कक्ष' में किसी की पदचाप सुनकर वह चौंक उठता है। वह अपनी जलती आंखें सामने उठाता है। पत्नी को देखकर वह घृणा से मुंह बिचका लेता है। रोजमर्रा की घटिया समस्याओं का सामना करना उसे अच्छा नहीं लगता है।

राशन खत्म हो गया है। आज शाम को खाना नहीं बनेगा। रोटी खानी हो तो शाम तक राशन का प्रबन्ध कर देना यह कह कर उसकी पत्नी अन्दर चली गयी।

वह कैलेण्डर की ओर देखता है। अट्ठाइस तारीख रविवार। पहली तारीख में अभी तीन दिन बाकी हैं। राशन उधार लाना पड़ेगा।

उसे याद आता है कि उसने सुबह भी कुछ नहीं खाया था।

उसकी अन्तड़ियाँ कुलबुलाने लगती है। ●

सम्पर्क-सूत्र
सांवर दईया
द्वारा : कानीराम सागरमल
महर्षि दयानन्द मार्ग
बीकानेर (राज.)

4

कोमिल्ला का डाक्टर

ओम प्रकाश शर्मा, एम. ए.

श्रीमती अशरफ अब बहुत कम बोलतीं। वे अपना अधिक से अधिक समय अवामी लीग के कार्यों में लगातीं। उनका पहला उत्साह अब मन्द पड़ चुका था। उन्हें जीवन में पहली बार अपने विवाह की सार्थकता तब अनुभव हुई थी जबकि उनके पति ने दिन-रात एक कर मुक्ति-वाहिनी के घायल सिपाहियों की जीवन-रक्षा का अभियान ही प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने अपने पति से कहा था,"आज मैं अपने आपको तुमसे जितनी अधिक जुड़ी हुई अनुभव करती हूँ उतना पहले कभी नहीं किया। आज तुम्हारी सेवाएं बच्चे-बच्चे की जुबान पर हैं। लोग तुम्हें मुक्तिदाताओं का रक्षक कहते हैं।" किन्तु डाक्टर इस प्रशंसा से अप्रभावित ही रहा था। आज जबकि कोमिल्ला पर पाकिस्तानी सेनाओं का अधिकार था डाक्टर अशरफ का अस्पताल पंजाबी सिपाहियों से भरा हुआ था, किन्तु अस्पताल के वातावरण में रत्ती भर भी अन्तर नहीं था। वहीं ऑपरेशनों का सिलसिला, घायलों को खून चढ़ाया जाना, मरते हुओं को ऑक्सीजन देना, मर जाने वालों को तत्काल अस्पताल से बाहर कर देना तथा पलग की प्रतीक्षा में नये घायल सिपाहियों की आशा पूरी होना।

डॉक्टर अशरफ उसी निष्ठा के साथ पंजाबी सिपाहियों की सेवा कर रहे थे, किन्तु उनकी पत्नी का मौन किसी आने वाले तूफान का पूर्वाभास कराता था। रात्रि को जब वे सोने लगते उन्हें शान्ति काल की बातें याद आतीं। उनकी पत्नी सदा ही बंगाल के दुर्भाग्य पर चिन्तित रहती थी। पाकिस्तानी तानाशाहों द्वारा किये गए बंगाल के शोषण के प्रति वे सदा ही जागरूक रही थीं। वे अवामी लीग की सक्रिय सदस्य थीं; किन्तु वे अपने डॉक्टर पति को

अपनी पार्टी का सदस्य बनाने में सदा असफल रहीं। हर बार डाक्टर का एक ही उत्तर होता—"डाक्टर का राजनीति से क्या सम्बन्ध ? डाक्टर तो केवल एक जाति की सेवा के लिये पैदा हुआ है। वह है—रुग्ण एवं घायल आदमी, राजनीति की बीमारी तो स्वस्थ होने के बाद लगती है और स्वस्थ मनुष्य से डाक्टर को क्या लेना देना ?" यह कह कर डाक्टर जोर से हस देता। इस उत्तर से चिढ़ कर उनकी पत्नी कहती, "डाक्टर ! तुम जिनको स्वस्थ आदमी कहते हो वे सब के सब रुग्ण हैं। इतना ही नहीं तुम भी रुग्ण हो। तुम सब जड़ता की बीमारी से ग्रस्त हो। बगाल देश की बरबादी तुम जैसे भले आदमियों के कारण हुई है।" यह कहते कहते वह उत्तेजित हो जाती। इस विषय को यहीं समाप्त करने के लिये डाक्टर कह देता, "अच्छा बाबा, तुम्हारी बात ठीक है। देश-सेवा के लिये मैंने एक प्रतिनिधि छोड़ रखा है, तब मेरी क्या आवश्यकता ?" यही वार्तालाप भिन्न-भिन्न तर्कों की सहायता से बीसियो बार दोहराया गया था, किन्तु दोनों ही अपने अपने विचारो पर दृढ़ थे।

"डाक्टर की पत्नी के व्यवहार में अन्तर स्पष्ट दिखाई देता। जब उसके अस्पताल में मुक्ति-वाहिनी के सिपाही भरे रहते थे, वह घायलों की सेवा में दिन-रात एक किये रहती थीं, किन्तु अब वह अस्पताल मे केवल डाक्टर से मिलने आतीं। एक दिन जब वह अस्पताल आईं एक सिपाही के सीने का खतरनाक ऑपरेशन किया जा रहा था। वह सीधे ऑपरेशन टेबल के पास आकर खड़ी हो गईं। डाक्टर बड़ी तन्मयता से ऑपरेशन मे व्यस्त था। घायल को खून भी चढ़ाना पड़ा, ऑक्सीजन भी देनी पड़ी। पूरे छह घन्टे के परिश्रम के बाद जब पंजाबी सिपाही के प्राण बचा लिये गए तो डॉक्टर के चेहरे पर ऐसी मुस्कान खेल गई मानो कि उसने बंग बन्धु शेख मुजीब की रक्षा की हो। श्रीमती अशरफ के लिये यह एक और विचित्र अनुभव था। पूरे ऑपरेशन के समय वह निरपेक्ष भाव से खड़ी रही थीं। डाक्टर को इस केस मे जितनी तन्मयता थी उनकी पत्नी को उतनी उदासीनता थी। रात्रि को सोने से पूर्व पत्नी के मुख से प्रशसा के दो शब्द सुनने के लिये डॉक्टर ने बात शुरू की—"यदि ऑपरेशन में जरा-सी भी लापरवाही की जाती तो रोगी मर जाता। शबनम ! मेरा आज का दिन सार्थक हुआ।" पत्नी ने अत्यन्त गम्भीरता से उत्तर दिया, "किन्तु [illegible] है।

ही सकता है यही सिपाही स्वस्थ होकर पचास बंगालियों की जान ले ले। मरे पाकिस्तानियों की तरह स्त्रियों और बच्चों पर अत्याचार करे।" यह सुनकर डॉक्टर की सारी प्रसन्नता काफूर हो गई और उसे बहुत देर तक नींद नही आई।

डॉक्टर की अपने पेशे के प्रति निष्ठा के कारण कोमिल्ला का सैनिक शासन उसका बहुत आदर करने लगा था। प्रायः सैनिक मुख्यालय से अधिकारी टेलीफोन पर पंजाबी सिपाहियों की कुशलता एवं आवश्यकताओं के बारे पूछते थे और डॉक्टर बड़े उत्साह से उनके प्रश्नों का उत्तर देता था। किन्तु धीरे-धीरे अवामी लीग के कार्यकर्त्ता डॉक्टर पर सन्देह करने लगे। पार्टी की एक बैठक में तो उसे शत्रु का गुप्तचर भी कहा गया। श्रीमती शरफ़ ने अपने पति की स्थिति स्पष्ट करने में कोई कसर न उठा रखी। फिर भी हत्या और लूटपाट के उस वातावरण मे डॉक्टर कब जनता की नज़रों से गिर गया—इसका पता डॉक्टर को न चल सका। किन्तु उसकी पत्नी को जनता के रुझान का पूरा पूरा ज्ञान रहता था। अब वह समय-समय पर जनता के विभिन्न वर्गों में स्वयं ही इस विषय को प्रारम्भ कर डॉक्टर की उन सेवाओ की याद दिलाती जो उसने बंगाल की मुक्ति-वाहिनी के सिपाहियों के प्रति की थीं; किन्तु जनता को पुरानी बातों में रुचि नही थी।

एक रात डाक्टर देर से घर लौटा। उसके कपड़े फटे हुए थे। चेहरे पर खरोंचें थीं और आधे बालों में मिट्टी थी। एक माह बाद वह दुर्गा माता के मन्दिर में गया था। वहाँ स्त्रियों ने उसे घेर लिया और उससे कहा,"डाक्टर, दुर्गा माता के सामने सौगन्ध खाओ कि शत्रु का इलाज नहीं करोगे।" जैसे ही डॉक्टर ने सौगन्ध खाने से इनकार किया, स्त्रियों ने चीखना चिल्लाना शुरू कर दिया—'देशद्रोही! पैसे के गुलाम! कुछ स्त्रियों ने उससे हाथापाई भी की। स्त्रियों की मर्यादा का ध्यान कर वह इस अपमान का प्रतिकार नहीं कर पाया। इसके अतिरिक्त उसके शरीर से भी अधिक उसका मन क्षत-विक्षत हुआ था। रात्रि को उसकी पत्नी ने उसे सान्त्वना देने की बहुत कोशिश की। उसके घावों की स्वयं मरहम पट्टी की। जब तक डॉक्टर सो नहीं गया वह उसके सिरहाने बैठी रही। उसके बाद भी वह सो नहीं सकी। चल-चित्र की भांति बार बार उसकी आँखों के सामने हज़ारों

अपमानित बंग-पुत्रियाँ और सैकड़ों उजड़े हुए घर आ जाते और दूसरे ही क्षण उसकी आँखों के सामने उसका पति आ जाता जो अपने निश्चित आदर्श से डिगने को तैयार न था। ऐसे संकट के समय उसका क्या कर्त्तव्य है ? यह सोचते-सोचते तीन बजने को हुए। अन्ततः उसका मानसिक संघर्ष समाप्त हुआ।

प्रातः जब डॉक्टर उठा तो उसे कल शाम के अपमान का ध्यान आया और उसका मन विषाद से भर उठा। उसने बिस्तर पर बैठे-बैठे ही प्रार्थना की, "हे मेरे प्रभु ! मुझे शक्ति दो कि मैं घायल मानवता की सेवा बिना भेदभाव कर सकूँ।" जैसे ही वह मेज़ के सामने आया उसे पेपर वेट से दबा हुआ एक पुर्ज़ा मिला। उस पर लिखा था—"डॉक्टर, मैंने बहुत विचार किया और अन्त में मैं इस नतीजे पर पहुँची कि हमारे और तुम्हारे रास्ते अलग-अलग हैं। मैं बंगाल की जनता का साथ नहीं छोड़ सकती।"

दूसरे दिन समाचार पत्रों में छपा—"शत्रु द्वारा अवामी लीग की प्रमुख कार्यकर्ता श्रीमती अशरफ का अपहरण कर लिया गया।" कोमिल्ला के लोगों ने सोचा कि इस घटके के बाद डॉक्टर मानवता की सेवा का दम्भ त्याग कर स्वतन्त्र सेनानियों के पक्ष में खड़ा होगा। किन्तु डॉक्टर को नियमित रूप से अस्पताल में उपस्थित देख जनता का मन डॉक्टर के प्रति घोर घृणा से भर गया। किसी ने कहा, "डॉक्टर के दिल के स्थान पर पत्थर लगा हुआ है। उसे न देश से प्यार है और न पत्नी से। बस, उसे पैसा चाहिए।" अपने ही परिवार और समाज से बहिष्कृत होकर डॉक्टर और अधिक तन्मयता पूर्वक अस्पताल में व्यस्त रहने लगा। कुछ परिस्थितियाँ ही इस प्रकार की थीं कि अब मुक्तिवाहिनी के घायल सिपाही इस अस्पताल में नहीं आते थे। किन्तु शीघ्र ही डॉक्टर की परीक्षा का समय आ गया। दस मील की दूरी पर पाकिस्तान के बमवर्षकों ने बमवर्षा की, शाम के सात बजे डॉक्टर को एक टेलीफोन मिला—"बमवर्षा से बहुत से नागरिक घायल हुए हैं। तत्काल एम्बुलेंस भेजें।" डॉक्टर ने गाड़ी भेज दी जो एक घंटे में घायलों को लेकर वापस आ गई। उन घायलों में से एक नागरिक की हालत बहुत

समाचार दिया कि शहर के सैनिक प्रशासक ने आपको तत्काल बुलाया है। डॉक्टर ने कहा "उनसे कह दो कि प्रातः काल से पूर्व मैं ऑपरेशन से मुक्त नहीं हो सकता।" इस चपरासी के जाने के कुछ समय बाद फिर यही सन्देश लेकर एक हवलदार आया और यही उत्तर लेकर वापस चला गया। एक घंटे बाद पाकिस्तानी सेना का एक उच्च अधिकारी ऑपरेशन कक्ष में आया और बोला—"इस ऑपरेशन से मैं आपको मुक्त किये देता हूँ।" यह कह कर उसने रिवॉल्वर से उस घायल नागरिक का निशाना लिया। डॉक्टर जोर से चिल्लाया, "यू बीस्ट! गेट आउट अव द रूम।" यह कहकर वह रिवॉल्वर और घायल के बीच में आ गया। रिवॉल्वर चली और डॉक्टर सब झंझटों से मुक्त हो गया।

कोमिल्ला के खंडहरों के मध्य एक कब्र पर लिखा है—

"यहाँ एक डॉक्टर सोया हुआ है जिसने मानवता को देश से भी ऊपर माना, शत्रु और मित्र में भेद नहीं किया। गृह-युद्ध के भयानक दिनों में भी वह अपने आदर्श से विचलित नहीं हुआ। ऐ पथिक! यहाँ एक क्षण रुको और प्रार्थना करो कि संसार अत्याचार और युद्ध से मुक्त हो जिससे डॉक्टर अशरफ़ जैसे सच्चे आदमी जीवित रह सकें।" ●

ओम् प्रकाश शर्मा एम.ए., बी. एड.
वरिष्ठ अंग्रेजी शिक्षक
रा. उच्च. मा. विद्यालय,
थानागाजी (अलवर)

5

जिन्दगी की टूटती कमर

लें०—योगेश भटनागर

महेश बाबू ने करवट बदल कर आँखें खोल दी। आँगन मे महरी बर्तन मांज रही थी। बर्तनों की उठा-पटक की ध्वनि से उनकी आंख खुल गयी थी। उन्होंने आँगन मे एक सरसरी दृष्टि डाली। पूर्व के कोने मे हारी-थकी धूप विश्राम कर रही थी। वहाँ रखे थाल की चमक ऐसी नहीं रह गयी थी कि आँखें चौंधिया जायें। उन्होंने सोचा—'धूप की रीढ टूट गयी है, वह पड़ी है। पड़े पड़े घिसटेगी और फिर दम तोड़ देगी।

महेश बाबू ने तकिये के नीचे से टटोल कर ऐनक निकाली और दर्पण के सम्मुख खड़े हो गये। दर्पण ने क्रूरता से उनका बुढ़ापा उनके आगे रख दिया। अब तो उनके बालों में एक बाल भी काला न रहा था। उनके मुख पर झुर्रियाँ भी पड़ गयी थीं। हाथ पैर सूख गये थे। आँखें गढ़ों में धँस गयी थी और इतनी मद्धिम पड़ गयी थीं कि ऐनक लगाने के बाद भी कठिनाई से दीखता था।

एक गहरी साँस लेकर महेश बाबू दर्पण के सामने से हट गये। उन्होंने कमरे मे नज़र दौड़ाई। उनकी छड़ी कमरे में नहीं थी। वह थके-थके से चारपाई पर फिर बैठ गये। थोड़ी देर यूँ ही बैठे रहे, फिर आवाज दी, "दिन्नू! ओ दिन्नू!"

दिन्नू उनके पोते का घरेलू नाम था। असली नाम तो दिनेश था, किन्तु कुछ प्यार से और कुछ बिगाड़ कर कहते सब थे उसे दिन्नू ही। दिन्नू का पिता प्रेमेश सेल्स टैक्स ऑफिस में एल. डी. सी. था। तनखा दो सौ तेईस रुपये और घर मे दस आदमी। माँ, बाप, पत्नी, बच्चा, दो भाई और तीन

बहिनें और स्वयं वह। बेचारा कमाता कमाता मरा जाता था फिर भी पूरी नहीं पड़ती थी। इसलिये नौकरी के बाद दो ट्यूशनें भी देता था।

प्रेमेश की पत्नी कमला का मस्तिष्क हर समय सातवें आकाश पर चढ़ा रहता था। कहीं किसी ने उसकी कोई बात काटी और उसका जी जला। फिर वह न सास को देखती और न श्वसुर को, न देवर को देखती और न ननद को। सबको एक लाठी से हाँकती। अकसर घर में कलह रहती।

बड़ी लड़की सलिला चौबीस की थी और मझली प्रमिला बाईस की। दोनों स्कूल में पढ़ती थी। सबसे छोटी उर्मि सोलहवें को पार कर रही थी और इस वर्ष उसने दसवीं की परीक्षा दी थी।

प्रेमेश से छोटे भाई हेमेश ने इसी वर्ष एम. एस. सी. पास की थी और उससे छोटे भाई राकेश ने बी. एस. सी. की थी। यों महेश बाबू का घर भरा पूरा था। उनके परिवार की नैया अब किनारे आन ही लगी थी। सलिला और प्रमिला ने अपने विवाह भर को धन एकत्रित कर लिया था। उर्मि भी बी. ए. कर नौकरी कर लेगी। हेमेश को भी नौकरी मिल ही जायेगी। महेशबाबू को तो हर ओर से बेफिक्री होनी चाहिये और सुखी होना चाहिये था, किन्तु वह सुखी नहीं थे।

घर के बाहर एक विचित्र-सा शोर मचने लगा। उन्होंने फिर आवाज दी, "दिन्नू ! कहाँ गया ?"

दिन्नू तो नहीं आया। कमला माथे पर तनिक सा घूंघट खींचे आयी और सीधा प्रश्न किया, "क्या है ?"

महेश बाबू कमला के स्वर और दृष्टि की तीक्ष्णता से घबरा-से गये। कमला के स्वर से स्पष्ट आभास होता था कि उसका प्रश्न अधूरा है। उसकी दृष्टि मानो कह रही थी, "न तुम स्वर्ग सिधारते हो और न चैन लेने देते हो।"

महेश बाबू सकपका से गये। बोले, "मेरी छड़ी नहीं दीखती कमरे में।"

"लाती हूँ।" कमला जाने के क्षण भर बाद ही छड़ी ले आयी। बिना बोले ही छड़ी एक कोने में रख दी और जाने के लिये मुड़ी। उसके मुड़ते ही महेश बाबू ने पूछा, "बहू ! प्रेमू की माँ और बच्चे वगैरह कहाँ है ?"

"हरगू के यहाँ चूआ पकड़ा गया है। उसीका तमाशा देखने के लिये गये है।"

कमला चली गयी।

महेश बाबू सन्त से बैठे रह गये। 'तो पकड़ा ही गया! अधिक दिनों तक यह काम चलते भी नहीं हैं।'

महेश बाबू उठ खड़े हुये। छड़ी उठा कर घर से बाहर निकल गये।

सड़क पर कई स्थानों पर बच्चे झुण्ड बनाये खड़े थे। चहक चहक कर आपस में बातें कर रहे थे। किस प्रकार धड़धड़ाती हुई तीन चार पुलिस की मोटरें आईं। किस प्रकार खटाखट उनमें से सिपाही कूद कूद कर उतरे और हरखू के मकान के चारों ओर फैल गये। किस प्रकार हरखू के हाथ हथकड़ियों से बंधे थे। किस प्रकार शेष जुआरी रस्सियों से बंधे थे आदि, आदि।

चार चार, छह छह घरों की स्त्रियाँ और लड़कियाँ किसी एक के दरवाजे पर खड़ी चर्चा मे मग्न थीं। उन्हें अन्दर जा कर बैठने या बिठाने का भी होश नही था। शायद वह किसी अन्य अनहोनी की प्रतीक्षा में बाहर ही खड़ी रहना चाहती थी।

गिब्बो की अम्मा कह रही थी, "अब देखूँगी, कहाँ से लायेगी नाईलोन की साड़ियाँ। पहन कर इतराती फिरती थी, नंगी कही की।"

"अरे पूरी बेसरम बेहया है सगुरी।" बिल्लो की अम्मा हाथ बना कर बोली, "किसीको नही मालूम था कि ये रूप की नुमाइस जुए के पैसे से है। फिर भी कहते ही आग लगती थी।"

"अब पूछूँगी मुँह झौंसी से—बोल, अब तेरा आदमी कैसे पकड़ा गया?" नयी बोलने वाली अभी कुछ और भी कहना है चाहती थी। किन्तु उसे मौन हो जाना पड़ा।

हरखू की स्त्री छज्जे पर खड़ी मुखबिर बिसना को और उसके पूरे खानदान को चीख-चीख कर कोसने लगी थी। उसके बाल फैले हुये थे। नेत्र रो-रो कर लाल पड़ गये थे।

महेश बाबू इन सब दृश्यों को मूक दर्शक की भाँति देखते देखते घुराने से निकले जा रहे थे।। सहसा पीछे से आवाज आयी, "अरे, महेश बाबू है क्या!"

महेश बाबू ने पीछे मुड़ कर देखा। कल्लारवरूप खड़े थे। सब इनको बिरमी बाबू के नाम से पुकारते थे। महेश बाबू मुड़ कर बिरमी बाबू की बैठक मे आकर बैठ गये।

बिरमी बाबू ने कहा, "चाय के लिए कह दूँ।" और बिना उत्तर की

प्रतीक्षा किये अन्दर चले गये। महेश बाबू ने सोचा कि चाय के लिये मना कर दें, किन्तु कुछ कहा नहीं उन्होंने। उन्होंने सोचा—'प्रेमू की माँ तो चाय भूल ही गयी। अक्सर भूल जाती है। किन्तु बुढ़ापे की शाम और वह भी गर्मियों की— चाय बिना कटती नहीं। जिस दिन चाय नहीं मिलती वह शाम बड़ी बेकली से कटती है। प्रेमू की माँ तो मुहल्ले के किसी घर में बैठी चर्चा में व्यस्त होगी। कमला से साहस नहीं होता कुछ भी कहने का। पता नहीं क्या बात है।'

विरमी बाबू चाय की ट्रे ले आये। चाय बनाते हुये बोले, "हरखू पकड़ा गया। चलिये शरीफ लोगों का जीवन दूभर होने से बच गया।"

"ऐसे कामों का यही परिणाम होता है।" महेश बाबू ने चाय का प्याला उठाते हुए कहा, "अब जुए की सारी कमाई मुकदमे में खर्च हो जायेगी।"

"हाँ। हर बुरे कार्य का परिणाम बुरा ही होता है। देखिये न ...... ।" जानबूझ कर विरमी बाबू ने बात अधूरी छोड़ दी।

महेश बाबू समझ गये कि कोई रहस्य है जो विरमी बाबू के पेट में पच नहीं रहा है। वह बोले, "हाँ, हाँ। कहिये न।"

"नहीं मैं सोचता हूँ कहीं आप बुरा न मान जायें।" विरमी बाबू कुछ झिझकते से स्वर में बोले, "कई दिनों से कहना चाहता था, लेकिन सोचता था–न जाने आप क्या सोचें।"

महेश बाबू सन्न से रह गये। उन्हें, विरमी बाबू की बात अपने से सम्बन्धित होगी, ऐसी आशा न थी। उनके घर में कोई जुआ कौड़ी तो होता नहीं। शराब की भट्टी तो लगी नहीं है। फिर......फिर.......हाँ लड़के लड़कियाँ सयाने अवश्य हैं।

एक अज्ञात सी आशंका से महेश बाबू परेशान हो उठे। उन्होंने अपनी परेशान दृष्टि उठाकर केन्द्रित कर दी विरमी बाबू के चेहरे पर।

विरमी बाबू बहुत साहस संजोने का अभिनय करते हुये बोले, "सलिला का चक्कर तो चल ही रहा था गुलाटी से, प्रमिला को भी मैंने हरेन्द्र के साथ कई बार देखा है। शादी से पहले ये प्रेम-व्यापार अच्छा नहीं लगता। बड़ी बदनामी हो रही है।"

महेश बाबू के प्याले में थोड़ी सी चाय बची थी। वह उसको ऐसे ही छोड़ कर उठ खड़े हुये।

"अच्छा देखूँगा।" कह कर वे बैठक से बाहर निकल आये।

और वहीं न जाकर महेश बाबू सीधे घर ही आये। मन में एक ज्वार उठ रहा था, लेकिन घर आते-आते वह ज्वार शान्त हो गया। उन्होंने कोने में छड़ी रखी, ऐनक को मेज पर पटका और चारपाई पर बैठ गये। घर में सब लोग आ गये थे। बस प्रेमेश ही नहीं आया था। उन्होंने सोचा-'वह और आ जाय, तब ही डाँट फटकार शुरु करूँ।'

किन्तु ज्यों ज्यों समय व्यतीत होता गया त्यों त्यों डाँट फटकार के सोचे हुये शब्द उनके मस्तिष्क से निकलते गये। उन्हें अधिकार भी क्या था बच्चों को डाँटने का। उन्होंने क्या किया जीवन में उनके लिये ? सब कुछ तो किया सिवाय इसके कि वह बच्चों को अपने से अर्थ की डोरी में न बाँध पाये। इस अर्थ-प्रधान युग में उनकी यही तो सबसे बड़ी दुर्बलता थी। यही तो वह कारण था कि डाँटना चाहते हुये भी वह अपने बच्चों को डाँट नहीं पाते। अपनी बहू कमला से इस प्रकार डरते हैं मानों वह उनकी बहू न हो कर उनकी कोई गुस्सैल गुरुजन हो।

बाहर आंगन में साइकिल की घन्टी बजी। प्रेम आ गया। महेश बाबू ने चाहा-उठें, किन्तु बैठे ही रहे। सोचा, 'थका थकाया आया है, थोड़ा स्वस्थ हो ले तो बात करूँ'।

इसके बाद काफी समय व्यतीत हो गया। भोजन बन गया। दिन्नू आया। बोला, "बाबाजी। खाना बन गया है। भाभी आप तो बुलाती हैं।"

दिन्नू कमला को भाभी ही कहता था। महेश बाबू 'अच्छा' कह कर दिन्नू के साथ ही चल दिये।

रसोई घर मे प्रेमेश महेश बाबू की प्रतीक्षा कर रहा था। कमला अपने कमरे मे लेटी थी। उसके इन दिनों पैर भारी थे। प्रमिला भोजन परोस रही थी। महेश बाबू को अवसर अच्छा जान पड़ा। वह बोरे पर बैठते हुये बोले,:"पम्मी, ये हरेन्द्र से तुम्हारी मित्रता कब से हो गयी है ?"

प्रमिला का चेहरा क्षण भर को फक-सा हो गया। किन्तु वह तत्क्षण सम्हल कर बोली, "हरेन्द्र बहुत अच्छा लड़का है बाबूजी। डेवलपमेंट बोर्ड मे इन्जीनियर है। हजारो रुपये की ऊपरी आमदनी है।"

अभी महेश बाबू कुछ कहने कि राकेश तोजता से अन्दर आया। वह हाँफ-सा रहा था। बोला, "बाबूजी। हरामू छूट आया। पहले तो दरोगा

कहता था कि जमानत ही न मूँगा। लेकिन जब चाँदी का जूता पड़ा तो अक्ल ठिकाने लग गयी। बाबूजी, मैं भी आई. पी. एस. के कम्पटीशन में बैठूँगा। पुलिस की नौकरी में रौब ही रौब और रुपया ही रुपया है।"

महेश बाबू का चेहरा लाल हो गया था। वह कुछ कहना चाहते थे किन्तु उनकी बात होठों तक आते-आते कट गयी। हेमेश बड़ा प्रसन्न-सा अन्दर आया। उसने आते ही महेश बाबू के और फिर प्रेमेश के चरण स्पर्श किये। महेश बाबू और प्रेमेश दोनों ने ही प्रश्न भरी दृष्टि उठायी। हेमेश चहकते स्वर में बोला, "बाबूजी, मेरी नौकरी 'नियोगी प्लम्बर्स एण्ड कन्ट्रक्टर्स' के यहाँ लग गयी है। वह सरकारी ठेकेदार है। मैं उन्हें ऐसी-ऐसी तरकीबें बता सकता हूँ कि मिट्टी भी सीमेन्ट सी जँचे। बड़े बड़े इन्जीनियर्स भी इस नकली सीमेन्ट का रहस्य नहीं जान पायेंगे। उन्होंने सात सौ रुपया महीना और 2% लाभ देने के लिये कहा है।"

प्रमिला प्रसन्नता से तालियाँ पीटने लगी। राकेश और हेमेश जोर शोर से 'फ्यूचर प्लान' बनाने लगे। प्रेमेश प्रसन्नता के आवेग में जल्दी जल्दी कौर निगलने लगा। और महेश बाबू.......निरीह से भोजन भूल कर एकटक रसोई घर के चूल्हे में मन्द पड़ती आग को देखने लगे।

"किस सोच में पड़ गये बाबूजी ?" प्रेमेश ने टोका।

"मैं एक बड़ी मज़ेदार बात सोच रहा हूँ।" महेश बाबू बोले, "तुम सब मेरे पास आ जाओ, तो बताऊँ।"

हेमेश, राकेश, प्रेमेश और प्रमिला सब चारों ओर से महेश बाबू के पास खिसक आये। महेश बाबू बोले, 'मेरे दिमाग में रुपया कमाने की एक ऐसी योजना आयी है जिससे हम थोड़े ही दिनों में लखपती बन जायेंगे।

सबके मुँह से प्रसन्नता की चीखें निकल गयीं। सब एकटक उनकी ओर देखने लगे। महेश बाबू गम्भीरता-पूर्वक बोले, "बाहर आँगन खुदवा कर पूरे मकान के नीचे कई अण्डर ग्राउन्ड कमरे बनवाये जायें। एक कमरे में शराब की भट्टी लगा लें। हेमेश अपने साइन्स के बल पर शराब में नये-नये स्वाद पैदा करेगा। राकेश पुलिस विभाग में जाने की अपेक्षा हाथ में पिस्तौल लिए हॉल में जुआ करायेगा। और.......और प्रमिला हॉल में बने स्टेज पर......."

"बाबूजी।" प्रेमेश ने चीखकर महेश बाबू को आगे बोलने से रोक दिया।

"क्यों क्या हुआ ?" महेश बाबू तीव्र दृष्टि सब पर डालकर बोले, "पैसा, पैसा, पैसा, जब तुम लोगों के दिमाग मे इतना पैसा समाया हुआ है तो जो मैं कह रहा हूँ, क्या बुरा है ? क्या तुम लोग इसीलिए पढ़े लिखे थे ? हरलू को बुरा कहते हो, क्यों ? इसलिए न कि वह जुआ कराता है। और तुम जो नकली सीमेन्ट बना कर देश को धोखा दोगे सो ? जाने कितनी इमारतें गिरेंगी। बाँध टूटेंगे। पुल गिरेंगे। जान माल की हानि होगी। जुआ, चोरी और डकैती को बुरा समझते हो, रिश्वत और बेईमानी को बुरा नही समझते ?"

एक क्षण को कोई कुछ न बोला। प्रमिला घुटनों में सिर दिये सिसक रही थी। प्रेमेश सदा की भाँति बुत बना बैठा था। प्रेमेश की माँ सलिला भी द्वार पर आ खड़ी हुई थी। हेमेश की दृष्टि मे क्रोध का ज्वार था और राकेश पैर के अंगूठे के नाखून से मिट्टी खुरच रहा था।

हेमेश ही बोला, "बाबूजी, आप सत्य का गला घोटने की कोशिश कर रहे हैं। युग को देखिये किस ओर जा रहा है। कोई है ऐसा जो रिश्वत न ले रहा हो, धोखा-धड़ी न कर रहा हो। युग ही इन बातों का है। इसके बिना काम नहीं चलता।"

"काम कैसे नही चलता ?" चीख पड़े महेश बाबू, "काम सब चलता है, किन्तु तुम लोग काम चलाना चाहते हो नहीं। यो कहो कि सच्चाई और ईमानदारी के रास्ते पर चल कर कुछ कष्ट नहीं सहन करना चाहते हो। भूखे रहने की हिम्मत नहीं तुममे। तुम लोग लालच और स्वार्थ के कारण अन्धे हो गये हो। अपनी दुर्बलता छुपाने के लिए युग की दुहाई देते हो। शर्म आनी चाहिए तुम्हे।"

हेमेश कटुता-पूर्ण विकृत स्वर मे बोला, "बाबूजी, ये सब बातें स्टेज पर शोभा देती हैं जहाँ ख्याली पुलाव पकाये जाते हैं। किन्तु आप यहाँ रसोई घर में बैठे हैं। यहाँ पुलाव नसीब होने की तो बात दूर, भरपेट चावल भी नसीब नही होते। आपको क्या मालूम कि किस प्रकार प्रमु भैया ने पसीना बहा-बहा कर हमको पढ़ाया है और दो समय की रोटी का प्रबन्ध किया है। आप तो लेक्चर देते हैं और अपने दायित्व से मुक्त हो जाते हैं। आप क्या जानें युग के यथार्थ को। इसी ईमानदारी के रास्ते पर चलकर कुछ आपने बहुत सुख उठा लिए और कुछ हमको सुख पहुंचा दिये। प्रेमू भैया को टी. बी. तक हो गयी।

एक आदमी घुस रहा है दाय में—आप चाहते हैं एक एक करके सभी इस दाय में घुसें।"

"बस करो····बस करो।" महेश बाबू ने कानों पर हाथ रख लिए। भोजन को जैसा का तैसा छोड़ कर वह चले आये अपने कमरे में लड़खड़ाते हुए, बेदम से, निढाल से। आकर वह 'धम्म' से चारपाई पर गिर पड़े मानो उनकी कमर टूट गयी हो।

किन्तु महेश बाबू को इसका एहसास नहीं था। वह देख रहे थे—देश के बड़े बड़े भवनों को भरभरा कर गिरते हुए; टूटे हुए बाँधों से निकले हुए पानी द्वारा उत्पन्न प्रलय जैसे दृश्यों को; रेलों के पुलों से गिरते हुए, लाखों आदमियों के हुजूम को चीखते-चिल्लाते इधर से उधर भागते हुए।

एक शोर·········एक संकट·········एक सर्वव्यापी चीत्कार।

महेश बाबू देख रहे थे·········देश की कमर टूटते हुए। देश को भरभराकर गिरते हुए महेश बाबू निरीह पड़े देख रहे थे, किन्तु वे कर क्या सकते थे? ●

लेखक—
योगेश भटनागर
राजकीय माध्यमिक विद्यालय,
मगने की ढाणी, कुड़ला,
बाड़मेर।

रेस

विश्वेश्वर

कहानी उसकी शादी से शुरू होगी। वह इकहरे बदन की साव
हकी। अपनी हमउम्र सखियों को चिढ़ाने वाली और उनका नेतृत्व
ली। सखियों की शादियो में सुरीले कंठ मे गीत गाने वाली। मनचले
दमाश लड़कों को मुंह चिढ़ाने वाली और स्कूल केरियर मे सदा फर्स्ट
ली राघू, भगत को ब्याह दी गयी।

मब ऐसा क्यों हुआ? कैसे हुआ········? बिरादरी मे कोई और ल
हीं था क्या·······? आदि आदि सवालों पर न जाकर इतना ही जान
ाफी है कि विधि का विधान था। बाई के लेख थे। जनम-मरण भगवा
ाय है। जब उसके मां-बाप एक योग्य लड़के के बारे मे सोच रहे थे,
सने यह संकेत करवा दिया था कि वह भगत ही से शादी करेगी। नहीं
ाजन्म कुआंरी रहेगी।

भगत से शादी करवाने का अर्थ था देखती आंखो उसे कुए में ध
ना। लेकिन वह कुए में गिरने को तैयार थी।

पूरी बिरादरी मे भगत से बढ़कर सुन्दर लड़का कोई नही था और
रादरी मे भगत से अधिक उद्दंड भी कोई नही था। लंठ, आवारा, बदम
भी विशेषण उस पर लगते थे। उससे सावधान रहने की और उस
चित नही करने की, मां-बाप अपने बच्चों को सीख दिया करते थे।

राघू उसे चाहने लगी थी। राह में जाते-जाते या इधर उधर खड़े
ह उसे देखा करती थी। देखा करती थी······· और वह चला जाता, f
ी देखा करती थी।

वह नदी पर नहाने जाता तो राघू भी नहाने चली जाती थी। और वह इस किनारे होता तो यह भी उस किनारे बैठी उसे देखा करती..........देखा करती और देखा ही करती।

पहले नदी मे जब बाढ़ आई थी। उस साल उसकी शादी मगत से हुई थी। उसकी शादी के महीने भर बाढ़ ही बाढ़ आई थी और किनारे से दो मील पर अर्जुन बाग के कई पेड़ उखड़ गये थे। कस्बे के घर-घर में पानी भर गया था। मगत और वह दोनों दूसरी मंजिल के अपने कमरे में सांकल लगाये बैठे रहे। मां बाहर सोचती रही कि उन्हें खाना भी खाना है या नहीं।

नीचे की मजिल में घुटने घुटने तक पानी भर आया था। सब डरे हुए थे, और अधिक पानी तो नहीं बढ़ जायगा। कहीं ये सब मकान डूब तो नहीं जाएँगे, पानी सात दिन तक बरसता रहा था।

इन सात दिनों में अधिकतर लोग नीचे की बस्ती छोड़ कर टेकरी की बस्ती में चले गये थे, लेकिन मगत ने सातों दिन राघू के साथ अपने दूसरी मजिल वाले कमरे ही में बिताए थे। अच्छे लगे थे वे सातों दिन। आज भी उसे याद है, जैसे इन्द्रधनुष के सात रंगों में डुबोये दिन थे। हर दिन का अपना अलग रंग था। घर के और बाहर के लोग बुरा कहते थे। लेकिन कुछ बुरा नहीं लगता था।

बरसात रुकी तो घूमने फिरने के और देखने दिखाने के दौर चल पड़े। आवारा-तराना बरसात और जाने क्या—क्या सिनेमा देखे थे। हर तीसरे दिन अर्जुन बाग घूमते हुए न्यू टाकीज पहुंच जाते। छोटे से कस्बे में तब भी दो सिनेमा थे। कभी खाना साथ लेकर उनके कुछ मित्र और उनकी पत्नियों के साथ पहाड़ पर चले जाते। बीस मील दूर की नीली झील पर चले जाते। गौरीशंकर के आश्रम चले जाते। मानसरोवर कुंड पर चले जाते। कई बार अर्जुन बाग ही घूमने लगते। मान मनते। चल छनती।

यह सब साल डेढ़ महीना ही रहा और फिर मगत को लगने लगा कि उसे कोई काम करना जरूरी है। अब वह बिना काम किये खाना खाना नहीं चाहता। अब उसका बेकार घूमना अच्छा नहीं लगता। मां भी कहती थी "अब कोई काम करले। कब तक निठल्ला बीवी के पास बैठा रहेगा।"

लेकिन काम मिलता नहीं था कहीं। कई दिन इधर-उधर घूमता रहा। इधर आते-जाते एक लाला की दुकान पर हिसाब की नौकरी हाथ लगी।

ह्मण होकर शराब की दूकान पर नौकरी! उसे बड़ा विचार आया था, लेकिन
लहाल और कोई चारा नहीं था। हर कोई पूछता था कितना पढ़े हो?
र वह कहता पांच क्लास तो वह कहते जगह नहीं है। ऐसी सूरत में यहां
करी तो मिली। पीनी थोड़े ही है। बेचनी ही तो है। तनखा भी पचास
ए थी। पचास रुपए तो मेट्रिक पास बाबू को मिलते थे। फिर सवेरे नौ
जे जाओ, शाम को आठ बजे चले आओ। बीच में तीन घन्टा रेस्ट।

कसाई खाने में रहकर मांस से घृणा निभती नहीं। अपने सिद्धान्त पर
गत साल छह महीने से ज्यादा कायम नहीं रह सका। आज कल भगत
क अच्छा खासा शराबी है। कहानी यहीं से शुरू होती है।

आज भी भगत को कुल सौ रुपए मिलते हैं, जब कि उसके दोनों छोटे
ाई चार-चार सौ लाते हैं। वे पढ़ लिख कर दफ्तरों में बाबू हो गये हैं।
मले को तो ऊपर की आमदनी भी रहती है, छोटे को सूखी तनखा है।
किन काफी है। उसके दो बच्चे-बच्ची हैं। छोटे के तो अभी कुछ है नहीं।
द उसके दो हैं। एक लड़का, एक लड़की। काफी हैं। लड़की के बाद जाने
ा हुआ? राधू का शरीर बहुत फूल गया और बच्चे-बच्ची होना बन्द
गया।

अब राधू को दिखने लगा कि डेढ़ सौ रुपए महीने के क्या माने होते हैं?
सकी नयी नयी आई दिरानियों ने जो अपने रहने का स्तर ऊंचा उठाया
यू एकाएक बहुत पीछे जा पड़ी। मझले के बच्चे-बच्ची टेरेलीन पहन कर
ने जाते हैं तो वह कुलबुला कर रह जाती है। घर में कई बार राशन मिलता
तो कई बार नहीं मिलता। भगत रात देर गये पीकर आता है। और
ाना खाकर सोया रहता है। इतना अच्छा है कि नशे में भी उससे कोई
गड़ा टटा नहीं करता। कभी कभी नशे में भी कहता है, तो यही कहता है—
हा था न" शराब की दूकान पर नौकरी करके शराब से अछूता नहीं रहा
सकता ...."

धरम भी बिगाड़ा और पेट भी नहीं भरा। अब डेढ़ सौ से क्या होना है
।"

तब राधू ने तय किया कि वह भी अब नौकरी करेगी। कितनी औरतें
करियां कर रही हैं। उनके घर कैसे सुखी हैं। वहां रात दिन की मक्खियां
ीं रहतीं। वह भी दसवीं तक पढ़ी लिखी है। नौकरी करके अपने घर को
ा सकती है। उसने भगत से कहा— . . . . ..

"मेरे लिए कोई नौकरी खोज दो न ······ ······?"

अचरज से देखता रह गया वह।

"क्या कह रही है तू···········?"

"ठीक कह रही हूँ। आजकल कितनी औरतें नौकरी करती हैं। उनके घर कैसे सुखी हैं? अब वह जमाना नहीं कि एक कमाये दस खायें, मैंने मैट्रिक पास की है? किसी प्राइवेट स्कूल में बात कर देखो।"

भगत के भी बात समझ में आई····क्या हर्ज है? आजकल तो सभी तरफ औरतें काम कर रही हैं। फिर स्कूल में काम ही क्या है? सौ डेढ़ सौ तो मिल ही जायेंगे।

उसने कस्बे के प्राइवेट स्कूलों में चक्कर लगाने शुरू किये तो एक दिग्विजय विद्यालय मे सौ रुपए पर काम मिल गया।

यहां से कहानी अपने मक्सद पर पहुंचती है। राघू सवेरे सात बजे जाती है और दोपहर को एक बजे लौटती है। भगत नौ बजे जाता है और रात्रि को ग्यारह बजे लौटता है। जब तक भगत बिस्तर से उठता है राघू जा चुकी होती है। और जब वह लौटती है तो भगत का लंचटाईम खतम हो चुका होता है। कई बार राघू किसी मिटिंग या जलसे में रह जाती है और देर से लौट पाती है। तो फिर दोनों पति-पत्नी का मिलाप रात्रि को दस ग्यारह बजे ही होता है। फिर भी आमदनी बढ़ी है और ओहदा भी बड़ा ही है। उसकी देरानिया घर के काम धंधे देखती हैं और वह सवेरे बन संवर कर बैग हाथ मे लिये स्कूल के वास्ते निकल पड़ती है, तो लगता है जैसे वह एक पढ़ी लिखी कामकाज वाली महिला है। लेकिन शरीर ने उसके साथ बड़ी बिताई है। लाख कोशिशें करने पर भी चढ़ा हुआ शरीर उतरता नहीं। वह चाहती है कि वह वापस पहले जैसी छरहरे बदन की हो जाए। लेकिन स्थिति यह है कि स्वयं उसका पति भी उसे टुनटुन कहने लगा है। वह अपने आप को बना संवार कर रखती है। फिर भी मुटापे पर ध्यान जाते ही उसका चित्त खिन्न हो जाता है। इस बीमारी के कारण तो उसने घी-शक्कर-चावल सब छोड़ रखा है, फिर भी हर दिन बांह का घेरा घटने के बजाय बढ़ता ही है।

दो तीन महीने की तनख्वा ही से घर की स्थिति बदलने लगी। बच्चे अच्छे कपड़े पहनने लगे हैं। वह स्वयं भी अच्छे पहनती है। भगत के लिए

भी अब टेरेलीन की ड्रेस सिलवाई गई है। अब तो उसकी इच्छा है कि किसी तरह अपने हिस्से का मकान थोड़ा ठीक ठाक करवाले। नल-बिजली नहीं है सो ले ले? लेकिन इतनी गुंजाइश है नही। ज्यादा देर उसे सहन नही। वह अपने पिता से कहकर कुछ रुपये उधार लेने की सोचती है। पिता से कहती है तो वे कमरे ठीक करवा देने को राजी हो जाते हैं। काम चल पड़ता है।

अब तो मंझली देवरानी और छोटी देवरानी कुछ न कुछ सोचने पर बाध्य हो जाती हैं। इसने नौकरी भी करली और घर भी बनवा लिया। तो उन्हें लगता है जैसे दौड़ में वे बहुत पीछे रह गई हैं और राघू बहुत आगे निकल गयी है। उन्हें ताज्जुब होता है कि इतनी बड़ी खाई को पार करके यह औरत यहां तक कब? कैसे? और क्यों निकल आई?

लेकिन इतना सब कह लेने पर भी राघू को लगता है कि एक बिन्दु ऐसा भी है जहाँ वह बहुत दबी हुई है और सभवतः इस कमजोरी से कभी नहीं उबर पाएगी। उसका पति शराबी है और शराब की दुकान पर नौकरी करता है। लाख मन को समझाने पर भी यह आत्मग्लानि उसका पीछा नही छोड़ती। कई बार अकेले मे वह रो देती है। भगत से कहती है—".अब तुम्हारा क्या होगा?" तो भगत कहता है—"मेरा क्या करना चाहती हो तुम........?"

"कुछ नहीं"......। सब कहते हैं, इसका पति बड़ा शराबी है। शराब की दुकान पर काम करता है। किसी किसी वक्त बड़ा बुरा लगता है। अब शराब नहीं छूट सकती क्या? आप कोई दूसरा काम नही कर सकते क्या?"

"अब क्या दूसरा काम होगा पगली। पन्द्रह बरस तो हो गये। तू तो मास्टरनी हो गई है सो तुझे लगता है कि यह शराबी चपरासी और मेरा पति। वहा स्कूल मे तरह तरह के मास्टर लोग हैं, उन्हे देखकर होता होगा कि क्यो न मुझे भी ऐसा ही पढ़ा लिखा मिला।"

तो राघू मन ही मन जल उठती है। जैसे उसके अनजाने ही बहुत गहराई मे कहीं यह भाव भी है जरूर जो अपने रूप बदल-बदल कर उसे सताया करता है। उस वक्त कैसे-कैसे न्योते थे सगाई के। आज वह बम्बईया तो एक्टर हो गया है। वह पागल-सी लड़की गगा उसे बिहाई गई; लेकिन सुखी है। यह भाव इन्होंने कैसे पकड़ लिया। और यदि पकड़ लिया तो यह भाव कोई खास भाव नहीं है। वह तो केवल यही चाहती है कि ये शराब

"मेरे लिए कोई नौकरी खोज दो न ···· ····?"

अचरज से देखता रह गया वह।

"क्या कह रही है तू···········?"

"ठीक कह रही हूँ। आजकल कितनी औरतें नौकरी करती हैं। उनो घर कैसे सुखी हैं? अब वह जमाना नहीं कि एक कमाये दस खायें, मैंने मैट्रिक पास की है? किसी प्राइवेट स्कूल में बात कर देखो।"

मगत के भी बात समझ में आई····क्या हर्ज है? आजकल तो सभी तरफ औरतें काम कर रही हैं। फिर स्कूल में काम ही क्या है? सौ डेढ़ सौ तो मिल ही जायेंगे।

उसने कस्बे के प्राइवेट स्कूलों में चक्कर लगाने शुरू किये तो एक दिग्विजय विद्यालय में सौ रुपए पर काम मिल गया।

यहां से कहानी अपने मकसद पर पहुंचती है। राधु सवेरे सात बजे जाती है और दोपहर को एक बजे लौटती है। मगत नौ बजे जाता है और रात्रि को ग्यारह बजे लौटता है। जब तक मगत बिस्तर से उठता है राधु जा चुकी होती है। और जब वह लौटती है तो मगत का लंचटाईम खत्म हो चुका होता है। कई बार राधु किसी मिटिंग या जलसे में रह जाती है और देर से लौट पाती है। तो फिर दोनों पति-पत्नी का मिलाप रात्रि को दस ग्यारह बजे ही होता है। फिर भी आमदनी बढ़ी है और ओहदा भी बढ़ा ही है। उसकी देरानियां घर के काम धंधे देखती हैं और वह सवेरे बन संवर कर बैग हाथ में लिये स्कूल के वास्ते निकल पड़ती है, तो लगता है जैसे वह एक पढ़ी लिखी कामकाज वाली महिला है। लेकिन शरीर ने उसके साथ बड़ी ज़्यादती की है। लाख कोशिशें करने पर भी चढ़ा हुआ शरीर उतरता नहीं। वह चाहती है कि वह वापस पहले जैसी छरहरे बदन की हो जाए। लेकिन स्थिति यह है कि स्वयं उसका पति भी उसे टुनटुन कहने लगा है। वह अपने आप को बना सवार कर रखती है। फिर भी मुटापे पर ध्यान जाते ही उसका चित्त खिन्न हो जाता है। इस बीमारी के कारण तो उसने घी-शक्कर-चावल सब छोड़ रखा है, फिर भी हर दिन बाहु का घेरा घटने के बजाय बढ़ता ही है।

दो तीन महीने की तनख्वाह ही थी कि घर की स्थिति बदलने लगी। बच्चे अच्छे कपड़े पहनने लगे हैं। वह स्वयं भी अच्छे पहनती है। मगत के लिए

कहानी—3

भी अब टेरेलीन की ड्रेस सिलवाई गई है। अब तो उसकी इच्छा है कि किसी तरह अपने हिस्से का मकान थोड़ा ठीक ठाक करवाले। नल-बिजली नहीं है सो ले ले ? लेकिन इतनी गुंजाइश है नहीं। ज्यादा देर उसे सहन नहीं। वह अपने पिता से कहकर कुछ रुपये उधार लेने की सोचती है। पिता से कहती है तो वे कमरे ठीक करवा देने को राजी हो जाते हैं। काम चल पड़ता है।

अब तो मझली देवरानी और छोटी देवरानी कुछ न कुछ सोचने पर बाध्य हो जाती हैं। इसने नौकरी भी करली और घर भी बनवा लिया। तो उन्हें लगता है जैसे दौड़ में वे बहुत पीछे रह गई हैं और राधू बहुत आगे निकल गयी है। उन्हें ताज्जुब होता है कि इतनी बड़ी खाई को पार करके यह औरत यहा तक कब ? कैसे ? और क्यों निकल आई ?

लेकिन इतना सब कह लेने पर भी राधू को लगता है कि एक बिन्दु ऐसा भी है जहाँ वह बहुत दबी हुई है और समवतः इस कमजोरी से कभी नहीं उबर पाएगी। उसका पति शराबी है और शराब की दुकान पर नौकरी करता है। लाख मन को समझाने पर भी यह आत्मग्लानि उसका पीछा नहीं छोड़ती। कई बार अकेले में वह रो देती है। भगत से कहती है—"अब तुम्हारा क्या होगा ?" तो भगत कहता है—"मेरा क्या करना चाहती हो तुम........?"

"कुछ नहीं..........। सब कहते हैं, इसका पति बड़ा शराबी है। शराब की दुकान पर काम करता है। किसी किसी वक्त बड़ा बुरा लगता है। अब शराब नहीं छूट सकती क्या ? आप कोई दूसरा काम नहीं कर सकते क्या ?"

"अब क्या दूसरा काम होगा पगली। पन्द्रह बरस तो हो गये। तू तो मास्टरनी हो गई है सो तुझे लगता है कि यह शराबी चपरासी और मेरा पति। वहां स्कूल में तरह तरह के मास्टर लोग हैं, उन्हें देखकर होना होगा कि क्यों न मुझे भी ऐसा ही पढ़ा लिखा मिला।"

तो राधू मन ही मन जल उठती है। जैसे उसके अनजाने ही बहुत गहराई में कहीं यह भाव भी है जरूर जो अपने रूप बदल-बदल कर उसे सताया करता है। उस वक्त कैसे-कैसे न्योते थे सगाई के। आज वह बम्बईया तो एक्टर हो गया है। वह पागल-सी लड़की गगा उसे बिहाई गई; लेकिन दुखी है। यह भाव इन्होंने कैसे पकड़ लिया। और यदि पकड़ लिया तो यह कार कोई खास भाव नहीं है। वह तो केवल यही चाहती है कि ये शराब

छोड़

छोड़ दें। और अब भी कहीं दूसरी नौकरी कर लें या स्वयं अपनी ही कोई दुकान खोल दें? लेकिन अभी इतनी पूंजी भी नहीं। वह भगत में अधिक कुछ नहीं कहती? लेकिन भगत को लगने लगता है कि जैसे अब वह स्वतः कुछ नीचे सरका जा रहा है। उसका काम वास्तव में बड़ा छोटा है जब कि राधू मास्टरनी है। फिर वह उससे पढ़ी-लिखी भी ज्यादा है और महीने में उसकी तनख्वा भी उससे ज्यादा हो जाएगी। तो भगत को मन ही मन शर्म-सी आने लगती है। कभी कभी गुस्सा भी आता है। यह विचार भी आता है कि यह किसी और के चक्कर में तो नहीं आ जाएगी। खुद कमाती है, इसे कोई मेरी परवाह थोड़े है। या मेरे ही भरोसे थोड़े है; लेकिन वह अपने विचारों को मानसिक कमजोरी समझ कर झाड़ देता है। और इसका विलोम सोचने लगता है। कितनी मेहनत से बिचारी नौकरी करती है और मेरी मदद करती है, तो मैं उसके लिए ऐसे विचार रखता हूँ। स्कूल जाएगी तो सबसे बोलेगी नहीं क्या? बोलने—चालने से भी कभी ऐसा कहीं होता है।

लेकिन फिर उसका मन बैठने लगता है। अब उसका शरीर भी पहले जैसा नहीं रहा है। जिस अनुपात से राधू का शरीर बढ़ता जा रहा है, उसी अनुपात से उसका शरीर घटता जा रहा है। चेहरे पर अब वह कश्मीरी सेवसी सुर्खी नहीं। बैंगन—सा कालापन चढ़ने लगा है। बाल आधे से ज्यादा सफेद हो चले हैं। क्योंकि अभी उसकी ऐसी कोई खास उम्र नहीं, पैंतीसवां चल रहा है, लेकिन उसे लगता है, जैसे वह बूढ़ा हो रहा है। उसे मालूम है, उसकी यह दुर्दशा शराब ही ने की है, लेकिन शराब छोड़ने का मतलब तो अब मौत ही है। वह कल्पना ही नहीं कर पाता कि शराब छोड़ कर भी अब कोई रात निकाली जा सकती है। वह जानता है कि शराब ही के कारण राधू उसे अच्छी दृष्टि से नहीं देखती, लेकिन किया क्या जाये। अब तो जैसे रात्रि की शराब के खातिर ही वह पूरा दिन काम कर लेता है। दृष्टि उसकी इसी तरफ लगी रहती है कि कब शाम हो और शराब मिले।

राधू की बढ़ती हुई स्थिति देखकर उसकी देवरानियों को भी होता है कि वे भी कुछ करें। जब वह दसवीं तक पढ़ी होकर भी इतना कुछ कर सकती है तो वे ग्रेज्युएट हैं। क्या नहीं कर सकती? दोनों देवरानियां एम॰ए॰ और बी॰ए॰ हैं। उन्होंने आपस में तय करके बी॰एड॰ ज्वाइन करने का है। मझले ने और छोटे ने भी उन्हें इजाजत दे दी है।

यह खबर राघू और भगत को लगती है तो उन्हें होता है, रेस फिर शुरू होने में है और शायद वर्ष-भर बाद दोनों देवरानियां उसकी सारी तपस्या धोकर शिखर पर चढ़ी मिलेगी। वे हाई स्कूल की *मास्टरनिया होंगी।* जब कि वह प्राइमरी स्कूल ही में पढाती रहेगी। तो उसे लगता है अब उसे भी आगे पढ़ना ही होगा। लेकिन इतनी ज्यादा मेहनत से वह घबरा भी गई है। वह भगत से कहती है—"*अब प्राइवेट बी० ए० तक पढना होगा।*"

भगत कहता है—छोड़ इस होड़ा-होड़ को सब अपने अपने नसीब का खाते पीते हैं। क्यों उनसे मुकाबला करने जाती है। लेकिन राघू कहती है—मुझसे नीची आंख करके नहीं चला जाता। बड़ी हूं तो बड़ी ही रहूंगी। देखते नहीं, जमाना कैसा हो गया है..........?

भगत उसे उपदेश देता-सा कहता है—देख, सन्तोष ही में सब कुछ है। ज्यादा हाय हाय से क्या फायदा। ये तो आंखों के आगे कान कर लिये हैं। बाकी औरत की जात मर्दों के बीच नौकरी करने जाए, घर के बाल-बच्चे इधर उधर भटकते फिरें। और मर्द का बच्चा खड़ा-खड़ा देखता रहे.......तो ......।

उसे लगता है, वह थोड़ा उत्तेजित हो गया है। जैसे उसका रहस्य बिखर पड़ा है। उसका संयम टूक टूक हो चुका है।

"मजबूरियां बहुत कुछ सहन करवाती हैं राघू"—उसकी आंखों में आंसू आ जाते हैं।

राघू के सामने एक दबा हुआ ज्वालामुखी प्रत्यक्ष होता है उसकी सारी मेहनत दांव पर लगी हुई दिखाई देती है। संभवत: कल तक उसकी देवरानियां बी०एड० में प्रवेश ले लेंगी और ये समझते हैं कि मैं..........।

विश्वेश्वर शर्मा
श्री कृष्ण निकुंज
भट्टियानी चोहट्टा
उदयपुर (राजस्थान)

आप हैं श्री लच्छू उस्ताद

लेo शंकरलाल माहेश्वरी 'शैलेश'

आपसे मिलिये, आप हैं श्री लच्छू उस्ताद, जाति से ब्राह्मण, बरसों से चुंगी नाके की नाकेदारी करते-करते सभी को निकट से पहचान लिया है इन्होंने। चेहरा अब भी रौबीला, मूँछों पर वही ऐंठन, और ठसक ऐसी कि क्या कोई थानेदार रखेगा ? जबान पर लगाम है, मन पर काबू है, पर यदि किसी अनीति के काम से जो छेड़ा तो बाँहे चढ़ा, सीना तान, सभी पित्तरों को एक साथ ही स्मरण कर लेंगे। किसकी हिम्मत है जो इनके सामने बोल सके, चौथी किताब उस समय की पास हैं जब अंगरेजी का तार पढ़ने वाले अंगुलियों पर गिन लिये जाते थे।

अगर आप इनसे प्रातः मिलना चाहें तो पांच बजे तक पहुंच जाइये अन्यथा दिन भर दर्शन दुर्लभ—रात में बड़ी देरसे आते हैं और जल्दी ही चले जाते हैं अपने काम पर—

लच्छू उस्ताद को आप कुछभी कह लीजिये—लच्छू दादा लच्छो जी लच्छू भैया, लछमन कभी नाराज नहीं होंगे, पर हां लच्छू उस्ताद को "लच्छो-महाराज" जो कह दिया तो लच्छू दादा हंसते हुये; आंखे गढ़ाकर आपसे कहेंगे" "वाह बेट्टा" मैं ही मिला हुं बनाने को—अच्छा देखूंगा—जा भाग यहां से—

बेकारी में तो कभी भी कहीं इन्हें देख लीजिये—किसी चौराहे पर दो चार मन-चलों के साथ हां में हां मिलाते, गरदन हिलाते गप्पें मारते उस जगह जहां पान की दुकान पास हो और चाय का होटल दूर न हो—

दखल हर बात में आप रखते हैं; वेद-पुराणों से लेकर तोता-मैना के

किस्से तक आप पूछलें, इस शैली से आप कहेंगे कि पूर्णिमा के दिन सत्यनारायण की कथा हेतु न्योता आप न दे बैठें। घबराइये मत, ये आयेंगे नहीं, क्योंकि इसे पाखण्ड समझते हैं। कभी-कभी भंग-भवानी का सान्निध्य भी प्राप्त कर लेते हैं, पर अकेले नहीं, दो चार मित्रों के साथ उस समय, जब आप इन्हें कभी मिष्टान्नों की पार्टी में आगमन हेतु पत्रिका भिजा चुके हों।

आदमी काम के हैं। आपमें कोई पैसा मांगना हो तो सनद ये दे दें, पुलिस थाने में पंरवी कराना हो तो दारोगा से लेकर हैड साहब तक ये बात कर लें। उधारी पटानी हो तो मोटा सोटा देकर इन्हें भेज दीजिये—बस, *समझ लीजिये बरसों की उधारी वसूल, पर सच्ची कमाई की वसूली होनी चाहिये।*

यात्रा में आपका साथ सभी चाहते हैं टिकिट की खिड़की पर रोब के साथ खड़े हो,क्यू तोड़ने वालों को लाइन मे लगादें, महिलाओं की पंक्ति मे खड़े होने वालों को हाथ पकड़ कर *नागरिकता का पाठ ये पढ़ादें* और रेल के डब्बे मे फैल कर बैठने वालों को वाह चढ़ा; मूँछों पर ताव लगाते जब ये कहेंगे "कहो मियाँ। जगह नहीं दोगे!" तो एक नहीं, आजू बाजू के सभी यात्री उठ खड़े होंगे और सामने वाले खड़े होने की तैयारी कर लेंगे।

चर्चा चल्वी हो तो क्या कहना। अपनी ही अपनी कहते जायेंगे ये, आप बीच पड़े बीच मे, तो सुनना पड़ेगा बेवकूफ हो, तुम नहीं समझते, कहीं ऐसा भी होता है? चुप रहो, और सुनो—"तो फिर मैंने उसे ऐसी धमकी दी कि बेटे को छठी का दूध याद आ गया और,जब कहा कि मन के मन हमारा काम हो जाना चाहिये तो हाँ भरनी पड़ी" हाँ उस्ताद, बस नहीं आज ही काम को हो जायगा—और कोई काम ?—

आप चाय के बाद में ठंडा भी पिला सकते हैं तो भरपेट के बाद गरम पानी भी, इन्हें कोई एतराज नहीं। ये जो गले मे रेशमी रूमाल बांधे, जालीदार कुरता पहने, बांये हाथ मे चांदी का-सा पान पकड़े पाजामा चढ़ा पहने, गुलाबी रंग का लहमन लगाये मस्त मौला झूमते आ रहे हैं, इनके मलोहिया यार हैं। मुर्गे फंसाने मे एक बार के उस्ताद बनते हैं। इनकी अपनी उमर वालों से इशारे मे जो बात होती तो तेमुल कारबार की पूरी आँखों देखा कानून भी इन्हें क्या समझ पड़ता—दूर तक नहीं जाने दें, इसीलिये

इन दिनों उस्ताद ने इनका साथ छोड़ दिया—

सिनेमाघर पर पहले 'शो' में आप इन्हें पहली बार तृतीय श्रेणी वालों की पंक्ति का अगुआ बना देखेंगे तो थोड़ी देर में देखेंगे कि "दादा" प्रथम श्रेणी का ढाई रुपये का टिकिट पाँच में बेच रहे हैं, बस बेकारी में दिन भर की मस्ती छानने के लिये दो चार टिकिटों की बिक्री पर्याप्त है।

इधर आइये, जहाँ यह मेला लगा है—देखिये वे जो दूर लम्बे बाँस पर फूले हुये गुब्बारे, ककड़ी, पपीता, लौकी और लंबी फलियों की शक्ल में बाँध रखे हैं, लच्छू भैया ही हैं। गले में मोटी टाट का मोटा थैला लटकाये, दूसरे कंधे पर कुछ बाँस की बाँसुरियाँ जमाए, मुँह से एक धुन बाँसुरी की बजाते गुब्बारा फुलाने मे व्यस्त हो गये हैं।

कुछ दिनों पूर्व पंडित आत्मानन्दजी से गीता का पाठ सुन लिया, अब क्या पूछो ! जब भी मिलेंगे, अपनी लम्बी गप्प में दो से अधिक बार और छोटी चर्चा में एक बार "कर्मण्येवाधिकारस्ते" का सूत्र कह जायेंगे।

जब से यह 'फेमिन' का काम चला है तब से तो ये छोटे साहब के ड्राइवर से मिलकर "मेट बाबू" बन गये। हाजरी भरना, गाड़ियों की गिनती करना, समय-असमय ठेकेदार से बात करना—ये ही कुछ कार्य इन्हें करने हैं।

आदमी दिल और दिमाग का साफ है फिर भला छोटे साब के कहने से वह सौ के स्थान पर सवा सौ गाड़ियों की गिनती बतायेगा ? कभी कभी 'पी' भी लिया करते हैं, पर अपने पैसों से नहीं, आदत जो पड़ गयी है।

इन दिनों इनकी नौकरी जाती रही, बात यह थी कि ठेकेदार साब ने छोटे साब को और छोटे साब ने बड़े साहब को शिकायत कर दी। नया मेट लाइन पर नहीं है—बस इस पर लच्छों की छुट्टी हो गई।

अब क्या ? लाल पगड़ी कुरते का लाइसेन्स प्राप्त कर लिया इन्होंने। दिन की दोनों और रात की फोर डाउन पर जाते हैं और बाबूजी कुली······ सेठजी मजूर ······ ······साब आदमी चाहिए ? इस लहजे से कहेंगे कि साब उसे असबाब उठाने का संकेत दिये बिना नहीं रह सकेंगे, भले ही उनके पास साल भीते वाली पेंडिंग कागजों की फाइल मात्र ही हो।

लोहे के तारों से सजी लठिया लेकर चौराहे के पास वाले पंचायत के पुराने दफ्तर के आहाते में आकर पतली फ्रेम के चश्मे वाले हरदयाल सरपंच को "ग्राम सभा" करके चोरों के इन्तजाम के निर्णय की बात कह आये।

कौन जानता था कि नीचे के तपके वाला, गरीब घर का, जिसकी बाहर के बड़ों से जान पहचान नहीं, ग्राम-सभा में सभापति बनाया जायगा—सभा जब पूरी होने वाली थी तो लच्छु सभापतिजी बोले "भाइयों! देश में लोगन कूं आगे बढ़ावे के काज, सरकार बहुत पइसा लगाय रही है, बहुत ऊँची ऊँची योजना बनावे है, पर ईश्वर इन दिनन हमते रूठ गयो है। कहूँ कहूँ तो घोर बरसा हूँते और कहूँ कहूँ बिल्कुल नाय होय, याते खेती खराब हो गई है, जिस कारन लोग चोरी करवे लग गये हैं, इसीलिए हम सबन कूं बोत मेहनत करनी चाहिये और बेईमानी भ्रष्टाचार ते दूर रहने को जतन करनो चाहिए।"

सभी ने लच्छुजी की जय-जयकार की और चोरों से रक्षा का भार लच्छुजी ने सम्हाल लिया—

लच्छुजी अब गाँव के चौकीदार हैं—ऐसे चौकीदार जो लालाजी के धन की भी चौकसी रखते हैं और गाँव वालों के पशुओं की भी, वे गरीबों से अधिक ब्याज नहीं लेने देते और दुःख की घड़ियों में नाज बटवाते हैं। जहाँ सरकारी सड़क बन रही हो, पुल तैयार हो रहे हों, नदी बँध रही हो तो वहाँ ये यदा कदा जाकर निगरानी कर लेते हैं कि देश का पैसा देश के काम तो लग रहा है।

कुछ बूढ़ों को और अधिक युवकों को समझाते हैं कि मेरी तरह जो बच्चों की फौज तैयार करली तो दुखी रहना पड़ेगा।

जब बेटे रामू के मित्र इकट्ठे होकर घर आते हैं तो उपदेश कहते हैं "खूब पढ़ो और अच्छे बनो पर कभी हड़ताल कर राष्ट्र की सम्पत्ति नष्ट मत करो।

हरीवा जाट को बाबू सुखीराम से मिलाकर कहा "अबकी बार के गेहूं का उन्नत बीज इस सहकारी भण्डार से लेना और जब रोग लगे तो इन बाबूजी से मिलना।"

'अपने मित्रों से घर-गृहस्थी की बात जब करेंगे तो कभी कभी कह देते हैं'

"यारों और सब करना पर इन छोकरियों को सँकड़ी मोहरी का पजामा और तंग कुरता कभी मत पहनाना"—

और आपसे क्या अर्ज करूँ उस्ताद के बारे में—उस्ताद का एक एक काम बड़ा प्यारा लगता है—सड़क पर कोई पत्थर न रह जाय, गलियो में कचरा क्यों पडा है ? बाजार की बत्तियाँ दिन मे ही क्यों जल रही है ? नल का पानी व्यर्थ क्यों जा रहा है, नाले के पुल का सीमेंट क्यों टूट गया—स्कूल का छोकरा बीड़ी क्यों पी रहा है ? और दीवालों पर गदे शब्द क्यों लिखता है ? सारी चिन्तायें एक साथ लिये यह हिन्दुस्तानी कहता है—"यारों ! ऐसे देश का विकास होगा कि विनाश"—बोलो, जवाब दो—

आज दादा को काम नही मिला—इधर-उधर घूम रहे थे तो अचानक डाक्टर साब की राजेन्द्र बाबू से मुलाकात हो गई, लच्छोजी का पुराना पडौसी है। देखकर बडा ही खुश हुआ मम्मी, पापा की कुशल पूछी और पूछा राजू ! आजकल क्या कर रहे हो ? बडे लजीले स्वर में राजू बोला "तीन साल डाक्टरी पास हुये हो गया दादा ! अभी तक बेकार हूँ। काम-दिलाऊ दफ्तर में नाम लिखाया है, शायद नौकरी मिल जाय, लच्छू जोर से ठहाका मार कर हँस पड़ा और कहा डाक्टर साहब ! डालो थैले मे गोलिया दवाई की और चलो मेरे साथ, गाँव मे बहुत मरीज मिलेंगे, कोई दिल के तो कोई तपेदिक के, सेवा और मेवा साथ-साथ ! क्यों ! आई बात पसंद।

एक बार जिले के सबसे बड़े साहब के बंगले पर ये पहुंच गये। पूछा ! साहब ने "आप ही लच्छू दादा हैं" जी, हां क्या काम करते हो ? पहले तो सड़क पर मिट्टी डलवाता था, टेकेदार सा॰ छोटे साब के आदमी हैं, बात न बन पड़ी तो छुट्टी कर दी, अब रात में रेल पर जाता हूँ और दिन में ठेला चलाता हूँ कोई मुझे पत्थर ढोने के लिये कह जाता है तो कोई सेठजी पैसा पटाने को बुलवा लेते हैं, कभी रात में चौकीदारी का धंधा भी कर लेता हूँ। मेहनत करता हूँ और मौज करता हूँ साब।—

भाई कुछ भी कहो, लच्छू जी के उदार स्वभाव को भुलाया नहीं जा सकता। तुलसी के "राम" तो 'भले बिना सेवई' दीन पर द्रवित हुये हैं। पर ये सज्जन तो बिन कहहिं दीन पर द्रवित हो जाते हैं। जेठ की दोपहरी मे भरी के

"यारों और सब करना पर इन छोकरियों को सँकडी मोहरी का पजामा और तंग कुरता कभी मत पहनाना"—

और आपसे क्या अर्ज करूँ उस्ताद के बारे में—उस्ताद का एक एक काम बड़ा प्यारा लगता है—सड़क पर कोई पत्थर न रह जाय, गलियो में कचरा क्यों पड़ा है ? बाजार की बत्तियाँ दिन में ही क्यो जल रही है ? नल का पानी व्यर्थ क्यों जा रहा है, नाले के पुल का सीमेंट क्यों टूट गया—स्कूल का छोकरा बीड़ी क्यो पी रहा है ? और दीवालों पर गदे शब्द क्यों लिखता है ? सारी चिन्तायें एक साथ लिये यह हिन्दुस्तानी कहता है—"यारों ! ऐसे देश का विकास होगा कि विनाश"—बोलो, जवाब दो—

आज दादा को काम नही मिला—इधर-उधर घूम रहे थे तो अचानक डाक्टर साब की राजेन्द्र बाबू से मुलाकात हो गई, लच्छोजी का पुराना पड़ौसी है। देखकर बड़ा ही खुश हुआ मम्मी, पापा की कुशल पूछी और पूछा राजू ! आजकल क्या कर रहे हो ? बड़े लजीले स्वर में राजू बोला "तीन साल डाक्टरी पास हुये हो गया दादा ! अभी तक बेकार हूँ। काम-दिलाऊ दफ्तर में नाम लिखाया है, शायद नौकरी मिल जाय, लच्छू जोर से ठहाका मार कर हँस पड़ा और कहा डाक्टर साहब ! डालो थैले में गोलियां दवाई की और चलो मेरे साथ, गाँव में बहुत मरीज मिलेंगे, कोई दिल के तो कोई तपेदिक के, सेवा और मेवा साथ-साथ ! क्यों ! आई बात पसंद।

एक बार जिले के सबसे बड़े साहब के बंगले पर ये पहुंच गये। पूछा ! साहब ने "आप ही लच्छू दादा हैं" जी, हां क्या काम करते हो ? पहले तो सड़क पर मिट्टी डलवाता था, ठेकेदार सा॰ छोटे साब के आदमी हैं, बात न बन पड़ी तो छुट्टी कर दी, अब रात में रेल पर जाता हूँ और दिन मे ठेला चलाता हूँ कोई मुझे पत्थर ढोने के लिये कह जाता है तो कोई सेठजी पैसा पटाने को बुलवा लेते हैं, कभी रात मे चौकीदारी का धंधा भी कर लेता हूँ। मेहनत करता हूँ और मौज करता हूँ साब।—

भाई कुछ भी कहो, लच्छू जी के उदार स्वभाव को भुलाया नहीं जा सकता। तुलसी के "राम" तो "भले बिना सेवईं" दीन पर द्रवित हुये हैं। पर ये सज्जन तो बिन कहहिं दीन पर द्रवित हो जाते हैं। पेट की दोपहरी मे मरो के

वापिस लौटते समय अगर आप सुस्ताना चाहें तो लच्छूजी के दौलत खाने का बाहर का बरामदा तैयार है, जहां ठंडे पानी की मटकी, खजूर की पत्तियों और चटाइयां आपको मिलेंगी थोड़ी देर आराम कर लीजिये। अगर आप रास्ता भटक गये हों तो ये साथ हो जायेंगे और सही रास्ता बताकर ही लौटेंगे।

हर फन के मौला हैं ये उस्ताद। अपने घर का सारा काम इनसे करवालो, रोटी बनवालो, जूते गंठवालो, मापण दिलवालो, भंग घुटवालो, मूंछे कटवालो, हर काम को पूर्ण निष्ठा, योग्यता और कर्मठता से पूरा करेंगे। जबसे इनकी विनोबा जी से भेंट हुई है, तबसे तो अजीब रंग चढ़ गया है इन पर, जब देखो तब काम में लगे मिलेंगे। बात करेंगे तो स्वावलंबन की ही बात करेंगे।

मौत मरकत,जात बिरादरी, भीड़-भाड़, जान बारात, गली बाजार, सड़क-चौराहे जहां भी लच्छो दादा मिलेंगे, सिर पर कमालू जुलाहे का बुना वही नीली धारी वाला चौकड़ीदार गमछा बाधे मिलेंगे या निष्काम कर्म में व्यस्त होंगे तो फिर गमछा उनकी मोटी कमर का कमरबंदा बन जायगा —उस दिन स्कूल जाती मालती मास्टरनी बोली लच्छू दादा अब की बार हमारी स्कूल में बड़ी बहन जी अच्छी आई हैं वह तुम्हें याद कर रही थी कह रही थीं 'लच्छो जी को बुलाकर नये कमरों के लिये पैसा इकट्ठा करवाना है।'

उस दिन प्रधान जी के घर के पास किसना हरिजन की बेटी भाड़ू निकालते निकालते दाता दीन जी के काशी से आये उस पडित लड़के से इसलिये झगड़ा कर बैठी कि उसने उसे कुछ कह दिया-इधर से लच्छोजी घूमते घामते आ धमके और जो उन्होंने दातादीन के छोरे को डांट पिलाई तो आस पास नलों पर पानी भरने वाली युवतियां, दूध लाती हुई लड़कियां, फेरी पर आया वजाज और काम पर आये कारीगर व मजदूर इकट्ठे हो गये, फिर तो लच्छोजी को आंखों पर बिठा लिया कहने लगे, लच्छो दादा इन बदमाशों का तो काला मुंह ही होना चाहिये, सूअर के बच्चे ने अपनी इज्जत आवरू भी नहीं देखी और इश्क करने चला, बड़ा बनता है, साला, सारी पंडिताई भूल जाएगा जो लच्छो उस्ताद का सोटा घूम गया।

एक बार रात में स्टेशन की सूनी बेंच पर इनसे अकेले मे मुलाकात हो गई तो बड़ी मस्ती से बातें करने लगे, जैसी लोग फुरसत में किया करते हैं। मैंने कहा लच्छू उस्ताद एक बात बताओ—तुम सारे काम अच्छे करते हो पर सिनेमा टिकट ब्लैक से क्यों बेचते हो और क्यों दूसरों के पिलाने पर पीते हो ? लच्छूजी का उत्तर था—बच्चू जी तुम क्या समझो, इन शराब पीने वालों केपास और ब्लेक से टिकट खरीद कर सिनेमा देखने वालों केपास मेहनत का पैसा नहीं, हराम का पैसा आता है तो इसे तो इसी प्रकार निकलवाना ही ठीक है। अगर हराम का पैसा यों नही निकलवाया गया और इनके पास ही रह गया तो ये हराम जादे ज्यादा उत्पात करेंगे—समझे बेटा ! ठीक बात है कि नही.... ?

वास्तव मे लच्छू दादा आदमी नहीं, फरिश्ता है। ●

प्रस्तोता—
शंकरलाल माहेश्वरी "शैलेश"
एम.ए.बी.एड. सा० रत्न,
वरिष्ठ अनुदेशक,
राजकीय हिन्दी अभिनवन प्रशिक्षण केन्द्र,
पो०—मसूदा
जिला—अजमेर (राजस्थान)

8

सड़न विजिट

विमला भटनागर

शिकायती कागजों का ढेर अपनी शीशेदार मेज पर देखकर एक दिन भगवान को भी गुस्सा आ गया। दो मिनट गम्भीर मूड में वह उन शिकायती पत्रों पर निगाह जमाये, माथे पर बल डाले सोचते रहे कि उन्हें क्या करना चाहिए? कुछ देर बाद ही उनके चहरे पर चमक उभर आई, उन्होंने सीना ताना, और सिर ऊँचा करके पैर के अंगूठे से मेज में लगी घंटी का बटन दबा दिया। घंटी अपनी कर्कश आवाज से घर्र-घर्र कर उठी।

दरवाजा खुला। एक सफ़ेद पोश चपरासी हाजिर हुआ। दफ्तर के सब कर्मचारियों को बुला लाओ—भगवान ने पूरे रौब की आवाज में कहा।

जी, अच्छा—सफेद पोश चला गया।

भगवान पूरे ऑफीसरी मूड में थे। देखते-देखते कमरा कार्यकर्त्ताओं से भर गया। भगवान के चेहरे पर गम्भीरता और गुस्सा देख कर किसी की चूँ करने की हिम्मत नहीं पड़ी। सब खामोश खड़े रहे।

—हाँ, तो आप लोग यह तो समझ ही गये होंगे कि आप सब को क्यों बुलाया गया है। देख रहे हैं सामने लगे शिकायती पत्रों का ढेर!

सब के सिर झुके थे। कोई हाथ मल रहा था, कोई सिर खुजा रहा था, कोई चप्पल में घुसे अंगूठे को आगे पीछे कर रहा था।

अब इस तरह से काम नहीं चलेगा। आज से मुझे इस कार्यालय की व्यवस्था को हर सूरत पर बदलना पड़ेगा। दुनियां आगे बढ़ती चली जा रही है, लेकिन हालत यह है कि लोगों के लिये खाने को अनाज नहीं है, पहनने

को वस्त्र नहीं है, रहने को मकान नहीं है ! मेरे नाम पर दुनिया वाले थूकने लगे हैं। क्या उनके आराम का ध्यान रखना हम सब का फर्ज नहीं है ?

भगवान कार्यालय में लाने वाले सुधारों का बखान करते हुए बोले—आज से मृत्यु व जन्म दोनों का लेखा-जोखा एक ही व्यक्ति पर नहीं रहेगा। हम कार्य को सब-सेक्शन्स में बाँट देना चाहते हैं। कुछ अस्थाई व्यक्तियों को डैप्यूटेशन पर लगा देंगे ताकि व्यवस्था जल्दी सम्भल जाये।

वह यमराज की तरफ मुखातिब होते हुए बोले—हाँ, तो यमराज जी, आज से आप मृत्यु-विभाग के सुपरिन्टेडेन्ट हैं। कहिये, आप को कितने सहायकों की जरूरत है ? ध्यान रहे, काम टिप-टॉप रहना चाहिए, दुनिया के किसी शख्स की शिकायत नहीं आए।

जी,""जी विभाग तो बड़ा ही है, काम भी आजकल अधिक है, फिर ऐरियर का कार्य ! आप आसानी से जितने डैप्यूट कर सकें कर दीजिये।

हूं:- कहकर भगवान ने दूसरी मुद्रा ली, फिर सामने रखे कागज़ पर टिक मार्क करते हुए मृत्यु-विभाग के लिये कुछ नये कार्यकर्त्ता घोषित कर दिये जैसे, नींद की गोलियाँ, आउट-ऑफ-डेट इन्जेक्शन्स, मार्फिया, साइनाइड आदि"

—मेरा ख्याल है ब्रह्मा जी को कुछ कम ही कार्यकर्त्ताओं की जरूरत होगी, जन्म-विभाग का कार्य वैसे भी ठीक चल रहा है।

ब्रह्मा जी अपनी तारीफ सुन कर खिल उठे, पर फिर भी काम की अहमियत जताते हुए बोले —भगवान ! दुनिया वाले लड़ाई-झगड़ाई छेड़ कर सामूहिक आबादी खत्म कर देते हैं, इसलिये जन्म-विभाग को अपने कार्य में द्रुत गति तो लानी ही पड़ेगी।

आप कार्य आरम्भ करिये, अपने आप सब ठीक हो जायेगा। लोग चाँद तक पहुँच रहे हैं, न होगा तो आबादी को वहाँ बसाने का इन्तजाम कर देंगे।

अब आप सब जा सकते हैं। विष्णुजी उस दिन छुट्टी पर थे, इसलिये उनके काम को भगवान ने सेक्रेटरी को सौंप दिया। काम तेजी से प्रारम्भ हो गया।

भगवान बाग में लान पर बैठे थे। भोर का वक्त था। ठंडी हवा उनके बालों को हल्का स्पर्श देकर गुजर रही थी। थोड़ी देर बाद भगवान ने देखा

कि श्री दिनकर क्षितिज से ऊपर चढ़ रहे हैं। देखते-देखते सुहानी धूप का स्वर्ण चारों तरफ बिखरने लगा।

भगवान अखबार का इन्तजार कर रहे थे। अखबार वाला फाटक के पार साइकिल ठहरा कर अदब से अखबार उनके हाथ में दे गया।

भगवान ने देखा मुख्य-पृष्ठ पर बड़े-बड़े अक्षरों में छपा था "चार व्यक्तियों के परिवार ने भूख से तंग आकर आत्म-हत्या करली। समाचार इस तरह का भी छपा था कि एक फौजी अफ़सर ने चिढ़ कर आदेश दिया कि जो लोग सेना की हुकूमत और उसकी गुलामी स्वीकार नहीं करते उन्हें गोली से उड़ा दो। अदाजा था कि लाखों व्यक्तियों को—आदमी, औरत बच्चे, बूढ़े सब शामिल थे—मार डाला गया।"

भगवान को लगा यमराज ने काम में प्रोग्रेस करनी शुरू करदी। उनको विश्वास होने लगा कि जन्म-विभाग और निर्माण-विभाग भी पूरी मुस्तैदी से कार्य करेगा और निर्धारित टार्गेट को पालेगा।

विकास के समाचार रोज-बरोज अखबार में छपने लगे। एक दिन भगवान ने जन्म-विभाग का आकस्मिक निरीक्षण करने की सोची। वह विभाग की प्रगति देखने पहुँच गये। उन्होंने देखा मेजों पर ज्यादा काम बकाया हालत में नहीं था। पड़ताल करने पर उन्होंने पाया कि यहां हर कागज पर इमिजिएट और अर्जेन्ट लिखा जाता है। उन्हें शिकायत पेटी में एक भी शिकायत पत्र नहीं मिला।

कार्यालय में यह चर्चा बढ़ गई कि जन्म-विभाग के इन्चार्ज का भगवान प्रमोशन करने जा रहे हैं। उन्हे खुशी हुई कि ब्रह्माजी ने यमराज की रोक टोक के बावजूद आबादी को टार्गेट से नीचे नहीं गिरने दिया। पचास लाख का एक्सट्रा बजट भगवान ने जन्म-विभाग के लिये स्वीकार किया। कार्यकर्त्ताओं के ग्रेड में वृद्धि की गई।

भगवान मन ही मन खुश थे कि आखिर उनका प्लान सफल हो ही गया। हिम्मत और बढ़ी। दूसरे विभागों को सुधारने की दिमाग में आई। वह सोचने लगे प्राथमिकता किस मद को दी जाये—भोजन! पानी? वस्त्र? रोजगार?

उन्होंने विष्णु जी को बुलवाया। विष्णु जी जब सामने आकर खड़े हो गये तब भगवान ने बड़े नम्र शब्दों में कहा—विष्णु जी, मैं सोच रहा था

आप कुछ ऐसी योजना बनाइये जिससे दुनिया में होने वाली अन्न, वस्त्र, रहने के स्थान की कमी दूर हो सके। बेरोजगारी की समस्या भी तगड़ी है, हमें हल तो निकालना होगा ही।

इसमें क्या मुश्किल है—विष्णुजी आत्म विश्वास झलकाते हुए बोले। उत्पादन की वृद्धि के तरीके मैं अमरीका से सीखकर आया हूँ। आप देखिएगा कि घाटे का बजट रखकर भी मैं किस तरह से योजना को पूरा करता हूँ। बीज, खाद वगैरह के वैज्ञानिक तरीके मैं अच्छी तरह जानता हूँ। सुना है आदमियों की हड्डी से जो खाद बनती है वह कितने ही गुना मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ा देती है।

विष्णु जी ने भगवान से 10 लाख का एकमुश्त धन चुटकी बजाकर सेंक्शन करा लिया।

प्लान छोटी-छोटी योजना पुस्तिकाओं में छप गया और उनको लाखों की संख्या में बाँटा गया। एक माह बाद अखबार में आया, अमुक बाँध आधा तैयार हो गया। आदमियों की हड्डी से बनी खाद ने अपनी सफलता दिखा दी। फ़सल बढ़िया हुई है जिसके पौधे अरबी घोड़ों की ऊँचाई के बराबर खड़े हैं। नहर में से नहर और उस नहर में से भी सहायक नहर निकालने में सिद्धहस्त विष्णु जी की तारीफ़ में अखबार पन्ने पर पन्ने रंग रहे थे।

भगवान ने खुशी में विभोर होकर विष्णुजी को बुलाया। बेचारे विष्णुजी घबराये हुए आए-कहीं भगवान के पास कोई शिकायत तो नहीं पहुँच गई।

"आपने बुलाया सर!" विष्णुजी ने खड़े-खड़े पूछा।

खड़े क्यों हो विष्णुजी, बैठो! मैं आज बहुत खुश हूँ। रेडियो ने जब तुम्हारे नाम की चर्चा की तब मेरा दिल खुशी के मारे उछलने लगा।

यह सब आप के ही प्रताप से है। विष्णु जी भावुक होकर गद्गद् स्वर में बोले। अपनी बात जानकर उनका भय गायब हो गया।

एक दिन भगवान हरे लॉन में बैठे अखबार की प्रतीक्षा कर रहे थे। अखबार आया और वह पढ़ने लगे। समाचार था कि बड़े बाँध का एक हिस्सा टूट गया। काम्बरदाता ने बाँध बनाने वाले ठेकेदार की बुरी तरह से आलोचना की थी।

भगवान को धक्का सा लगा। उन्होंने विष्णु जी से डी. ओ. के द्वारा जवाब मांगलिया।

विष्णु जी को भगवान की गिरगिटी पलट अच्छी नही लगी। और फिर भी उन्होने अपने बचाव का रास्ता निकाल लिया और बांध के टूटने की गलती अपने सिर पर न लेकर उस 'छींक' पर डाल दी जो उस वक्त आई थी जब बांध की नीव पड़ रही थी।

भगवान ने विष्णु जी के माथे पर शिकने देखीं तो ठंडक अपनाली और विष्णु जी को खीला-मीठा कर दिया। आखिर काम तो उन्हीं से लेना था।

श्री यमराज, मिस्टर ब्रह्मा और दूसरे बराबर के अफसरों को यह बड़ा नागवार लग रहा था कि भगवान विष्णु को अनुचित रियायत देते जा रहे हैं। महीने की निश्चित मीटिंग मे सबने मिलकर विष्णु का विरोध करने का तय कर लिया।

महीने के अन्तिम सप्ताह में भगवान ने मीटिंग बुलाई। सब ने अपने-अपने विभाग द्वारा की गई तरक्की का ब्यौरा दिया। भगवान शान्तिपूर्वक सुनते रहे। असली विषय के आते ही वातावरण गरम हो गया। सबने अपनी-अपनी तरह से विष्णुजी पर हमला करना शुरू कर दिया।

—बांध टूटने के कारण की जाँच की जानी चाहिये।

—इस समाचार के छपने से हमारे कार्यालय की बेहिसाब बदनामी हुई है।

—इस तरह से रुपये की बरबादी की गई तो दूसरे डाइरेक्टर हम सब की खबर ले लेंगे।

भगवान ने विरोध को बढ़ते हुए देख कर अपना स्वर ऊँचा किया। वह खड़े होते हुए बोले—लेकिन मेरी समझ में नहीं आता आप सब इस तरह क्यों बड़-बड़ा रहे हैं। यह कार्यालय मेरा है। मैं इसका सबसे बड़ा अफसर हूँ। मेरा काम है कि मैं आप सब का कार्य देखूँ। आप की इस तरह की दखलंदाजी मुझे कतई पसन्द नहीं है। आप सब जा सकते हैं। मैं अपने अधिकार से मीटिंग बर्खास्त करता हूँ।

सब अपना सा मुँह लिये चले गये। विष्णु जी की गर्दन गर्व से ऊँची थी।

भगवान ने दूसरे दिन एक कमेटी बना दी, जिसे कार्य सौंपा गया कि वह बांध से टूटने के कारण की खोज करे और शीघ्र ही उनके सामने रिपोर्ट पेश करे।

समय बीत गया। एक दिन भगवान ने पत्नी से कहा—स्वर्ग में रहते-रहते ऊब गये हैं, चलो धरती पर घूम आएं। एक ही तरह के काम ने बोर कर दिया। घूमना का घूमना हो जायेगा, काम की जाँच भी कर लूंगा और टी ए., डी. ए. भी बन जायेगा।

श्रीमती ने फौरन हामी भर दी। वह खुद स्वर्ग में रहती-रहती ऊब गई थी।

भगवान अपनी पत्नी-सहित दुनिया की 'सड़न विज़िट' पर निकल पड़े। धरती पर कदम धरते ही भगवान के हाथ के तोते उड़ गये। देखते क्या हैं कि जिन व्यक्तियों की मृत्यु की फाइल तैयार हो गई थी, वह सड़कों पर घूम रहे थे। अस्पतालों के लिये जो दवायें इशू करी गई थी वह सब दवा बेचने वालों की दुकानों पर पहुंच गई थी और मरीजों को शक्कर की गोलियां दी जा रही थीं। फ़सल के नाम खेतों में छोटे-छोटे पौधे फासला लिये हुए ऐसे खड़े हैं जैसे गजे की चांद पर छुट-पुट बाल। जहां बांध बनना था वहां भगवान गये तो देखा चूना, ईंट, कंकरीट, पत्थर पड़वाने की व्यवस्था विष्णुजी कर रहे हैं। मजदूरों की जगह बीस-पच्चीस व्यक्ति खड़े है। बाघ की बनने की तो बात क्या, उसकी अभी नीव खोदी जा रही थी। देखते-देखते भगवान को चक्कर आने लगे। वह पास ही एक टीले पर बैठ गये, इस डर से कि कहीं धड़ाम से जमीन पर गिर न जायें। पत्नी ने उनकी बाहें सम्भाल कर सहारा दिया।

—मेरा जी घबरा रहा है देवी, मुझे यहां से दूर ले चलो। मुझे नहीं पता था कि मेरे लोग मुझे ही..................। भगवान आगे नहीं बोल सके।

श्रीमती ने थोड़ी देर बाद उन्हें वहां से हटाया। वह जानती थी कि उनके पति की क्या हालत है।

—चलिये रेस्त्रा मे चलें, कॉफी पीजियेगा, तबीयत ठीक हो जायेगी।

भगवान को सुझाव ठीक लगा। दोनों लगभग दो फर्लांग चलने के बाद एक बड़े रेस्त्रा में पहुंच गये। अन्दर आकर खाली केबिन में बैठे और बैरा के आने पर उसे कॉफी का आर्डर दिया। बैरा ने काफी के दो मग रख

दिये । भगवान अब भी परेशान थे । वह सोच रहे थे यह सब कैसे हुआ? क्या हुआ ?

तभी उन्हें पास के केबिन में से हंसी-ठट्ठे की आवाज आई । आवाज उन्हें पहचानी हुई लगी । विष्णु, यम, ब्रह्मा सब उस केबिन में थे ।

—कहिये विष्णु जी, हमारे लिखे समाचार आपके बॉस को पसन्द आए ?

यमराज बोले—क्या कहते हैं खन्ना साहब, आपके अखबार को पढ़कर भगवान मग्न है । वह सोच रहे हैं हम सब काम ही काम कर रहे हैं।

भगवान ने सुना, खन्ना नाम का अखबार वाला कह रहा था—आप लोग तो करोड़ों के आसामी हो गये हमें लखपति भी नहीं बनाया ।

कैसी बात करते हो खन्ना जी; अब की पेमेंट आपके ही नाम है। विष्णु जी ने तय किया है कि आपकी कोठी इतनी आलीशान बनेगी कि क्या किसी महाराजा का शाही महल हो ।—यह यमराज की आवाज थी ।

ब्रह्मा जी बोले—आपके लिये केडलक कार का आर्डर कर दिया गया है।

भगवान से अब नहीं सुना गया । उन्होंने खड़े होकर श्रीमती को इशारा किया कि वह उनके साथ बाहर आ जाएं । भगवान को लग रहा था उनके पैर लड़खड़ा रहे हैं और जमीन उनके नीचे से तेजी से खिसकती जा रही है ।

दूसरे दिन भगवान स्वर्ग में थे । कार्यालय वालों को सूचना मिली कि स्वर्ग के स्पेश्लिस्ट डाक्टर भगवान के यहाँ पहुँचे हुए हैं । उनकी तबीयत बहुत ज्यादा खराब है । डाक्टरों ने मना ही कर दी है कि जब तक इनकी हालत सुधर नहीं जाती किसी को इनसे न मिलने दिया जाये । पर किसी को यह पता नहीं चला कि भगवान दुनिया का 'सडन विजिट' करने गये थे ।

विमला भटनागर
महारानी गर्ल्स हायर सैकण्डरी स्कूल
बीकानेर

9

वाग्दान

●

जी० वी० आजाद

मीनू ! ओ मीनू !! यह क्लाक किसका है ?

रसोई से निकलते हुए मीनाक्षी ने कहा जी, और हाथ का संकेत देते हुए कहा—यह सामने वाले रख गये हैं।

सामने वाले कौन ? मिश्रा बाबू ?

जी हाँ।

मैंने साश्चर्य प्रश्न करते हुए पूछा क्यों ?

मीनाक्षी व्यस्तता प्रकट करते हुए कहने लगी, जी, मुझे नहीं मालूम। थोड़ी देर पहिले वे आये और कहने लगे यह गुप्ता बाबू को दे देना। वे इतना कह क्लाक को टेबुल पर रखकर चल दिये। मैंने पूछा भी था कि क्या कुछ कहना है ? परन्तु वे बोले—नहीं, वे स्वयं समझ जायेंगे। यह कह कर मीनाक्षी पुनः रसोई में चली गई, शायद उसे सब्जी के जलने की महक आने लगी थी।

मेरे ठीक सामने वाले मकान में रहते हैं मिश्रा बाबू। रिटायर्ड हैं। उन्हें केवल अब एक ही शौक है, रमी का। दिनभर वे रमी खेलते हैं। आज साठ वर्ष की आयु हो जाने पर भी वे जिन्दा दिल हैं, हाजिर जवाब हैं। मैं कभी-कभी उनके साथ बैठकर रात के दो-तीन घण्टे रमी खेलने में बिता लेता हूँ। उनका मुझ पर बहुत स्नेह और अपनत्व हो ऐसी कोई बात नहीं है परन्तु

लगता था जैसे हम परस्पर बहुत घनिष्ठ हैं। उनकी यही विशेषता थी कि वे न किसी के व्यक्तित्व से एकदम प्रभावित होते थे और न किसी की दुर्बलताओं से, उसके सम्बन्ध में कोई स्थाई मत ही बना लेते थे।

कुर्सी पर बैठकर क्लाक की इस घटना के सम्बन्ध में मैं रात की बात सोच रहा था। गत रात हम लोग रमी खेल रहे थे, पूरे सात खिलाड़ी थे। मैंने कहा इतना धीरे खेले और पत्ता फेंकने में इतनी सुस्ती की तो इस राउन्ड में पूरा एक घण्टा लगेगा। मिश्रा बाबू ने कहा कि घण्टा? पूरे सत्तर मिनट, बल्कि ज्यादा ही। उन्होंने दीवार में लगे क्लाक की ओर देखकर कहा ठीक आठ बजे हैं, नौ बज कर दस मिनट के पूर्व राउन्ड खत्म नही होगा। तभी मैंने अपनी बँधी कलाई में घड़ी की ओर देखकर कहा—आज मिश्रा बाबू आपकी घड़ी कुछ सुस्त भी है। मिश्रा ने बिना क्लाक की ओर देखे ही इत्मिनान से कहा क्लाक बिल्कुल सही है, आज सवेरे ही समाचार के समय मैंने उसे रेडियो से मिलाया है और दिनमें विविध-भारती के समय उसकी चाल की गति को ठीक पाया है। यह कहते हुए वितृष्णा से उन्होने होठो को कुछ वक्र करते हुए पान की बेगम फेंक दी और हाथ में पत्तों को समेटते हुए बोले डुप्लीकेट पर डुप्लीकेट आते जा रहे हैं न जोकर न प प सू।

मैंने अपना पत्ता ढेरी से उठाते हुए कहा—मिश्रा बाबू ! घड़ी चाहे आपने मिलाई हो परन्तु इससमय वह है सुस्त ही है। मिश्रा बाबू ने उसी निश्चयता के साथ कहा—घड़ी बिल्कुल ठीक है। यदि अन्तर आ जाये तो घड़ी कमरे से हटा दूँगा। घड़ी आपको ही दे दूँगा। तब तक पुनः उनके पत्ता उठाने की बारी आ गई। उनके अगले खिलाड़ी ने पान का बादशाह फेंका था, उसे देख कर उनके ललाट पर समानान्तर दो रेखायें उभर आयीं और अपने पत्तों को गड्डी में मिलाते हुए बोले 'पेक'।

दो डील के बाद ऊपर के कमरे में रखे रेडियो से सिगनल की ध्वनि होने लगी और मेरी नजर पुनः दीवार पर लगी क्लॉक पर जा पहुंची। घड़ी आठ बजाकर चालिस मिनट पूरा करने का यत्न कर रही थी। तभी मैंने कहा देखिये मिश्रा बाबू, हिन्दी में समाचार आने को हैं, आठ पैंतालीस होने चाहिए और उसी-क्षण रेडियो से समाचार बुलेटिन प्रारम्भ हुआ। मिश्रा बाबू घड़ी की ओर एकटक देख रहे थे, कहने लगे कमाल है, दिन को ढाई बजे तक घड़ी सही थी

प्रदिर्शनी—3

और अभी पाँच मिनट का अन्तर। खेल चल रहा था। डील के बाद डील और राउन्ड के बाद राउन्ड। इस राउन्ड के पश्चात् खेल खत्म किया और मैं घर लौट आया।

सोचा मिश्रा बाबू ने घड़ी पहुँचा कर रात का वादा पूरा कर दिया है। किन्तु वे अपने शब्दों के प्रति इतने गम्भीर और निष्ठावान होंगे यह मैंने कभी नहीं सोचा था। इसी समय कॉल बेल की ध्वनि सुनकर मैंने पूछा, कौन ? उत्तर के स्थान पर स्वयं कपूर साहब कमरे में प्रविष्ट होते दिखाई दिये। मैंने उल्लास के साथ कहा, आइये ! आइये !!

कमरे में घुसते ही उनकी दृष्टि शायद टेबुल पर रखे क्लॉक पर ही पड़ी जिसे देखकर वे पूछ बैठे, कहिये जनाब, यह कहाँ से मार लाये हैं ? मैंने उन्हें कुर्सी पर बिठाते हुए कहा, "मार क्या लाये हैं यार, एक अजीब मजाक बन गई है।" फिर रुककर मैंने कहा, कपूर साहब, कभी-कभी बड़े विचित्र कैरेक्टर देखने को मिलते हैं और उन्हें क्लाक के सम्बन्ध में सारी बातें संक्षेप में सुनादीं। कपूर साहब उम्र में मुझसे बड़े थे और इस शहर में मेरी अपेक्षा पुराने भी थे। मेरी बात सुनकर बोले, तुम किस मिश्रा की बात कर रहे हो वही न अशोक मिश्रा। मैंने गर्दन हिलाते हुए कहा, नहीं, नहीं, वे नहीं हैं ? मेरे सामने वाले पड़ोसी अविनाश मिश्रा। कपूर ने बीचमें ही रोककर, हाँ,हाँ तुम इन्हीं सामने वालों की बात कर रहे हो न ? अरे क्या मैं इतना भी नहीं जानता ? जिसे तुम अविनाश अविनाश कर रहे हो वही तो अशोक मिश्रा है। मैंने प्रश्न-सूचक भाव से दोहराया, अशोक मिश्रा ? वे बोले 'हाँ' तो तुम नहीं जानते यही अविनाश मिश्रा अशोक मिश्रा हैं। मैंने दरवाजे पर लगे पर्दे की ओर दृष्टि डालकर आवाज देते हुए कहा, मीतू ओ मीतू ! देखो कपूर साहब आये हैं। ये ठण्डा और गर्म कुछ नहीं पीते हैं। यह सकेत देकर मैंने पुनः कपूर साहब से कहा, यह सब कैसे है भाई, तुम तो पहेली बुझा रहे हो—कपूर साहब ने हाथ की पुस्तक को टेबुल पर रखते हुए कहा, गुप्ता साहब यह पहेली तो है, परन्तु है बड़ी मजेदार बात।

तभी मीनाक्षी नाश्ते की दो तश्तरियां हमारे सामने टेबुल पर रखकर खड़ी हो गई और मुस्कराते हुए पूछने लगी, किस मजेदार बात का चर्चा हो रही है, मैं भी सुनूं तो भला ?

मैंने हंसते हुए कहा यही मित्रा बाबू की बात कर रहे थे—कपूर
कह रहे हैं ये अविनाश मित्रा नहीं अशोक मित्रा हैं। मीनाक्षी ने कहा,
मित्रा—नहीं जी। जब से हम इस मकान में आये हैं सभी को हमने अ
मित्रा ही कहते सुना है। हमें भी इस मकानमें आये पन्द्रह बीस साल ह
बीकानेरी सेव मुंह में डालते हुए कपूर साहब ने कहा, सच है मिसेज
अविनाश अशोक ही का अवतार है। मीनाक्षी तब तक सामने वाले
बैठ चुकी थी। कपूर साहब कहने लगे—कई वर्ष पहिले की बात है,
साहब विवेकानन्द नगर मे रहते थे इनका नाम अशोक था। कॉलि
मुझसे दो वर्ष सीनियर थे। गुप्ता साहब! जैसा आपने कहा थे
एक विचित्र कैरेक्टर ही हैं। लेकिन बहुत इन्टेलीजेन्ट और स्मार्ट।
कालिज असेम्बली में एक प्रश्न उठ खड़ा हुआ और अशोक एक पर
में उभर आया। पक्ष-विपक्ष में चुनौती दी जाने लगी। अशोक ने
कहा, यदि मेरा कथन गलत निकले तो मैं अपना नाम बदल दूंगा—
ने तुरन्त चुनौती स्वीकार करते हुए कहा—इसका निर्णय कौन करेगा
ने निर्भीक स्वर में कहा—प्रिंसीपल माथुर। दुर्भाग्य से अशोक सा
हार गये, बात बहुत साधारण थी। परन्तु दूसरे ही दिन कॉलिज
फैल गई "अशोक मित्रा अविनाश मित्रा बन गये हैं।

शाम को जब घर पहुंचा तो सात बज चुके थे। मीनाक्षी को
बैठा देखकर एक दम मुझे सवेरे का वादा याद हो आया कि आ
बजे वाले शो में जाने का प्रोग्राम निश्चित था—मैं मित्रों में उलभ
यह बात भूल ही गया। मैने कमरे में प्रविष्ट होते हुए कहा, मीनू
वेरी सोरी—मीनू, सचमुच यह बात एक दम मैं भूल ही गया—
उसकी ठोडी पकड़ते हुए अत्यन्त स्नेह-विगलित स्वर में कहा,
दीजिये ना?

मीनाक्षी स्वभाव के अनुसार मुस्कराते हुए कहने लगी, रहने
यह कोई नई बात नहीं हैं आपके लिये। परन्तु सब आप जैसे नहीं
जो वादा करते हैं पूरा न होने पर नाम बदल देते हैं, नौकरी
मर्यादा और अरमानों को मसोस कर अनचाही चिरसंगिनी तक
लेते हैं। हूं—ऽऔर एक आप हैं। सोफे पर पास ही बैठते हुए मैं
डीयर, इतना गुस्सा क्यों होती हो। पिक्चर ही तो चलना है,

परसों चलेंगे। 'मयूर' में नया पिक्चर आया है 'धुंधले चित्र'। बड़ी टॉप स्टोरी है, नोवेल्टी है। मीनाक्षी ने कहा – अजी रहने दीजिये जैसी टॉप स्टोरी मैंने आज सुनी है वैसी किसी पिक्चर मे नहीं मिलेगी। क्या गजब का सीन और उसकी डेप्थ है, कैसा रोमांस और एडवेन्चर है। बात और वचन को निभाने वाले ऐसे जीव आज भी जिन्दा है यह जानकर सुबह से आश्चर्य हो रहा है।

मैंने मीनाक्षी की आंखो मे आंखें डालते हुए विनोद के स्वर में कहा, क्या कोई नई खोज करली है? इतना गर्व और भावुकता कैसे उमड़ पड रही है। मीनाक्षी ने उठते हुए कहा, पहिले खाना ले आती हूं, कब का बना तैयार रखा है, सिनेमा की प्रतीक्षा में बेचारा बेसुध हो गया होगा।

सन माइका की टेबुल पर रखी चीनी की प्यालियाँ शायद स्टील के चम्मच छूने से रोमांचित हो जाती थी—चम्मच में पदार्थ समग्र होकर सिमिट आता था खाने मे पूरी और सब्जी का भी एक विचित्र विरसता है। मीनाक्षी कहने लगी, मैं आज मिश्रा जी के यहां गई थी, कई दिनों से उनकी पुत्र-वधु बुला रही थी—आ भी नहीं पाई थी और आज घडी का यह काण्ड हो गया तो मैं चली गई। वे बात कहती जा रही थीं और मैं विराम लगाता जा रहा था। मैंने कहा, अच्छा फिर? मीनाक्षी ने पूरी के कोर को आलू की सब्जी मे तर करते हुए कहा, मैंने उनसे घडी के सम्बन्ध में बात की थी और कहा था कि बहिन, उसे वापस मंगवा लीजिये—बात की बात वह तो पूरी हो गई। मिश्रा जी की पत्नी अलका ने बात सुनकर कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—ये बात हुई क्या? अभी मैं देख रही थी कि आज घड़ी की आवाज क्यों नही आ रही है? लो-घर मे ले-देकर एक घड़ी थी; उसे भी आप पहुंचा आये।

अरे तो क्या हुआ, आप मगवा लीजियेगा? मैं यही तो कहने आई थी। वे हंस कर कहने लगी—अरे बहिन, क्या कहती हो कहीं ऐसा भी हुआ है? मैंने पूछा, क्यो? तो गभीर होकर वे कहने लगी, अब तुम्हें क्या बताऊ? मैंने आग्रह से कहा,फिर भी? वे बोली,फिर भी क्या? ऐसा करके क्या मुझे मेरे ही अस्तित्व को चुनौती देनी है? मैं कुछ सहम गई, सच कहती हूँ। मीनाक्षी ने मेरा हाथ पकड कर कहा परन्तु मेरी जिज्ञासा जागृत हो रही थी। मैंने साहस करके पूछा 'इसमें आपके अपने अस्तित्व को चुनौती की क्या बात है?

परन्तु ये धुन के पक्के थे, इन्होंने स्पष्ट कर दिया—यदि पिताजी को अपने वचन-निर्वाह का इतना गौरव है तो मुझे भी पिताजी ने वचन दिया है वे पूरा करें मैंने वचन दिया है उसे मैं पूरा करूंगा।

वे कुछ देर रुक कर कहने लगीं-इनके घर की सभी बातें किसी न किसी प्रकार मेरे पास आ जाती थीं और जब मैं इनके दृढ़ निश्चय की बातें सुनती तो मेरा सारा शरीर रोमांचित हो जाता था-भय और आशंका से मैं विह्वल हो जाती थी, कि जाने क्या होने वाला है ? उधर पिताजी माताजी से कहा करते थे कि कहीं हमारी गरीबी का उपहास तो नहीं ? मेरे लिये भी इनकी प्राप्ति कल्पनातीत थी। परन्तु मेरा मन कहता था कि मुझे यह वरदान प्राप्त हो गया है और मैं अपने पिता का बोझ हल्का कर सकूंगी। अन्त में वैसा ही हुआ।

चट से प्याले को ट्रे मे समेट कर रखती हुई वे कहने लगीं, अब तुम्हीं बताओ जो मुझे इस प्रकार अपना बनाकर लाया है। उसे मैं कहूं कि गुप्ताजी के यहां घड़ी क्यों रख आये ?

10

चन्दन देत जराय

●

भगवतीलाल व्यास

एक दिन एक मैली कीचड़ भरी आँख ने सफेद संगमरमर के आलीशान ताज का सपना देखने का गुनाह किया। दूसरे दिन किसी बौने मरियल तट ने सीमाहीन सागर को अपने बाहुपाश में जकड़ने का दुस्साहस किया और सुनते हैं तबसे वह ज्वार के किसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर भी अपनी जबान नहीं खोल पाता। सिर्फ एक बौखलाहट बिखेर कर रह जाता है। नीचे के तबके के सैलानी उसे जब-तब सुन आते हैं।

मृत्युंजय सोच रहा था, ऐसा क्यों होता है आखिर ? सपना देखना अगर गुनाह है तो हर आँख सजा की भागीदार है। नीचे के तबके के सैलानियों के मुकद्दर मे बौखलाहट भर लिखी है तो किसी जुहू पर ही सागर की सारी सम्पन्नता समर्पित होती है ? ये ऐसे प्रश्न हैं जिन्हे सुलझाते-सुलझाते अनेक मृत्युंजय मृत्यु के असंख्य गाँठों वाले जल में खो गये हैं और अपने नाम की निरर्थकता सिद्ध करते हुए स्वयं अनागत के लिये एक प्रश्न-चिन्ह बन गये हैं।

मृत्युंजय ने भी एक सपना देखा था। सपना देखा ही नहीं था उसने सपने को जीया था। एक खूबसूरत सपने को एतबाराना अंदाज मे जीना कुछ मायने रखता है। लेकिन सपना देखने वाले को यकायक किसी दिन लगे कि उसका सपना मर रहा है, मरता जा रहा है तो क्या होगा ? शायद वह खुद भी यह लिखकर मर जायगा कि—"मृत्युंजय अब कभी न जनमने के लिये मर रहा है।" मगर ऐसा नहीं होता। मृत्युंजय जनमते हैं, ताजमहल उभरते हैं और कोई दुष्ट तट किसी सत्संगी लहर को ......।

मृत्युंजय अपने कमरे से बाहर निकल आया। अंगड़ाई और जंमुहाई-

मुँहबोली बहनों को एक साथ निपटाकर उसने एक उड़ती सी निगाह मटमैले आकाश पर फेंकी। अच्छी-खासी बरसात के दौरान छोटी-बड़ी छतों का मैल धोकर जब पानी जमीन पर फैलने लगता है और जमीन पर उगी घास, तारकोल की सड़क पर वगैरह-वगैरह को अपने में समेट कर, बहने लगता है तब उस पानी का एक विशेष रंग होता है। कुछ-कुछ ऐसा ही लग रहा था इस समय आकाश। किन्तु इस तरह का रंग न जमीन पर अधिक टिक सका है, न आकाश पर ही। मृत्युंजय भारी कदमों से वापस कमरे में आ गया। उसे लगा जैसे वह दिनभर जलते रेगिस्तान में चलता रहा है।

खाट की विरोध-स्वरूप हुई चरमराहट की अवज्ञा करते हुए उस पर बैठ गया और पुराने कागजों को बिखेर कर कुछ ढूँढने लगा। मनुष्य अपनी छोटी सी उम्र में भी कभी-कभी पीछे लौटना चाहता है। ऐसा शायद सब नहीं कर पाते, कुछ करने का प्रयास करते हैं पर विवशता हाथ लगती है। मृत्युंजय भी जब इन कागजों में बिखरे हुए अतीत को नहीं पकड़ पाया तो उन्हें समेट कर एक ओर पटक दिया और मोढ़े में धँस गया। वह सोचने लगा—आकाश""और धरती""इनके बीच की दूरी""इस दूरी में कूद फाँद करता आदमी। यही जिन्दगी है। इस कूद फाँद में चन्द जिन्दगियाँ बिखर जाती हैं। जो नहीं बिखरतीं वे भी बनी हुई कहाँ तक रह पाती हैं? अगर अन्दर ही अन्दर कुछ टूटने का आभास उन्हें हर कदम पर होता रहता है और वे जिन्दगियाँ मुँह बना-बना कर उस अहसास को पीती रहती हैं।

आकाश पर फिर बिजली चमकी और दूर कहीं इमली के पेड़ पर बसेरा करती चिड़ियाओं ने अपने को एक दूसरे में छिपाने का प्रयास किया। उसने तय किया कि वह नीरा के पत्र का जवाब कल दे देगा पर जैसे अपने ही इस निश्चय पर उसे कोई विशेष तसल्ली नहीं हुई। आखिर क्या हो जायगा जवाब देकर भी? क्या वह उस जवाब से नीरा के सपनों को फिर जिला सकेगा। मगर जवाब तो उसे देना ही था। कल अगर उसने जवाब नहीं दिया तो कुछ भी अकल्पनीय हो सकता है। इस मामले में वह नीरा की आदत जानता है। कल तेरह तारीख है""गुरुवार""तेरह तारीख। नीरा ने ऐसा ही लिखा था कि वह उसके पत्र की तेरह तारीख तक प्रतीक्षा करेगी। यदि तेरह तारीख तक पत्र नहीं मिला तो""तो""तो। वह आगे नहीं सोच सका।

प्रस्थिति—3

यह नीरा भी अजीब लड़की है। भला तेरह तारीख ही क्यों चुनी उसने अपने इतने महत्वपूर्ण पत्र के उत्तर के लिये। मगर क्या किया जाय? अपना अपना विश्वास जो ठहरा। उसे तेरह का अंक पसन्द है। वह कहा करती थी–किसी अंक-शास्त्री ने उसे बताया है कि प्रेम-रोमांस आदि प्रसंगों के लिये यह अंक उसके पक्ष में है। बावली लड़की है नीरा।

हाँ, नीरा सचमुच बावली लड़की है''''और उस रोज भी शायद तेरह ही तारीख थी जब उसने अपना बावलापन मृत्युंजय पर प्रकट किया था। उम्र से वह तभी सयानी हो चुकी थी। एक औसत औरत की जिन्दगी में दो दर्जन बरसातों का पानी बावलापन धोने के लिये कम नहीं होता मगर वह नहीं धो सकी थी। कहती थी—"सब सयाने हो जाएँगे तो अपना सयानापन किसके सामने प्रकट करेंगे? मुझे ऐसी ही रहने दो। मैं जैसी हूँ ठीक हूँ और वही हूँ जो मुझे होना चाहिये।" कुछ ऐसी ही भाषा में वह बातें करती है जिसका एक और सबूत वह पत्र है जो इस समय भी मृत्युंजय के सामने पड़ा हुआ जवाब माँग रहा है।

आज बारह तारीख है। उसे नीरा के पत्र का उत्तर हर हालत में आज दे ही देना है। उसने लगभग आठवीं बार कलम उठा कर बिना एक भी शब्द लिखे वापस रख दी। वह निश्चय नहीं कर पारहा था कि नीरा को क्या उत्तर दे और कैसे दे? रह-रह कर परस्पर विरोधी विचार उसके मस्तिष्क में कौंधने लगते और वह झुंझला कर कलम रख देता। मृत्युंजय के लिये ही क्या, किसी के लिये भी अनिर्णय के क्षण बड़े दुरुह होते हैं। उसके लिए इनकी दुरुहता उस समय और बढ़ जाती है जब नीरा समीप होती है। अभी भी नीरा उसके समीप है। नीरा नहीं, उसकी लिखावट है। लिखावट के पीछे नीरा की अंगुलियां हैं, दो सदली हाथ हैं, हाथों के पीछे पूरा जिस्म है, उसकी सांसे हैं, धड़कने हैं''''कागज़ के इस पुलिन्दे में बन्द। संदल मानी चंदन का एक गुण होता है—उसकी महक, जो एक अनबूझ सवाल करती है हर संपर्क में आने वाले से। कहते हैं चंदन में एक अवगुण होता है—साँप जिसके कारण उसके इर्द-गिर्द लिपटे रहते हैं। नीरा चंदन की '' ''''है। उसकी महक कमरे में फैल रही है तेज और तेज होती हुई। इस महक को अनुभव करता हुआ मृत्युंजय सोच रहा है''''साँपों के बारे में। चंदन और नीरा नीरा और साँप'' चंदन में लिपटे हुए साँप'' ''''नीरा में'' ''''। उसे

इस तरह सोचना बड़ा बेहूदा लगता है। जंगली कहीं के। उसने अपने आप से कहा।

कहने को तो उसने कह दिया मगर वाक्य उसे सुना-सुनाया लगा। कब सुना था? उसे याद आने लगा—नीरा ने ही एक दिन 'अति' की स्थिति में कहा था तब वह नीरा को सोफा पर वैसा ही छोड़ कर भड़ाक से किवाड़ बन्द करता हुआ यह कह कर निकल आया था—'जंगली मैं नहीं तुम हो नीरा? कभी फुरसत मिले तो अपने आइने मे मेरी बात की तर्दद करना लेना।'

नीरा जंगली लड़की थी या नहीं, यह बात अलग है, मगर वह जंगली चंदन जरूर थी। अब-अब वह साँपों से बहुत तंग आ गई थी। चाहती थी कि किसी पूजा-घर में पहुंच कर इनसे मुक्ति पा ले। मगर पूजा-घर उस चंदन को क्यों स्वीकार करने लगा जिसने उसे साँपों के साथ देखा हो। एक नहीं, अनेक बार। वैसे तो हर चंदन का कमोबेश विषधरों या विषभरी निगाहों से बचना कठिन होता होगा, मगर 'देखने' 'न देखने' की बात है। नीरा के मामले में यही बात मुख्य थी। नीरा को अपने मृत्युंजय पर इतमीनान था और इसलिये उसने इस कठिन समय मे उसे पत्र लिखा था। मगर मृत्युंजय वह सब कैसे भूल सकता है जो उसने देखा है। यद्यपि वह भूल जाना चाहता था।

जिसे मनुष्य भूल जाना चाहता है, वही बात सबसे ज्यादा याद आती है। मृत्युंजय भी मृत्युंजय से पहले मनुष्य था। वह जितना ही इस मामले को सुलझाने की कोशिश करता, खुद उसमें उलझ जाता। कनपटियाँ गरम हो जातीं और माथे में झिंगुर से बोलने लगते। वह परेशान कमरे [illegible] लगाता और हर बार खिड़की तक पहुंच कर आँख भर आकाश को देखता जैसे उसके प्रश्न का समाधान वहीं अंकित हो। आकाश बड़ा सूना है। शायद ही किसी को कोई समाधान दे पाता हो। उसकी स्थिति आने पर [illegible] बेहतर न [illegible] फिर खिड़की से लौट आता और जमीन पर [illegible] चलते हुए यहाँ से वहाँ तक काफी चक्कर लगाया करता।

एक चक्कर और वह लगा या [illegible] स्थिति में, मृत्युंजय अब भी उसी स्थिति में था कुछ तय नहीं कर पाता था। उसकी एक 'हाँ' करने की [illegible]

घर में ला सकती थी। एक 'ना' उसे किसी भीलनी के हवाले कर सकती थी। जो निश्चय ही उसे चूल्हे में झोंक देगी और बहुत दिनों बाद लोग वह पुराना मुहावरा रस ले-लेकर दोहराने लगेंगे।

वह भविष्य की बात है जो सबका अपना और अलग होता है। इस समय तो चन्दन खुद जलने की बजाय जला रहा है मृत्युंजय को, जो अभी-अभी बड़े डाकघर में नीरा के पत्र का उत्तर छोड़ कर आया है। उसने आदत के अनुसार मोढ़े में धंस कर आँखें बंद करलीं। उसे लगने लगा कि लेटर-बाक्स का लाल रंग पिघल कर आग की शक्ल में फैलता जा रहा है जिसमें सब कुछ जल रहा है" ताजमहल, जुहू तट, बरसात का रंग, भयभीत चिड़ियाएं, नीरा के पत्रों का पुलिन्दा, वह स्वयं और फिर आग ' आग ' सर्वग्रासी आग। 'नहीं, नहीं" नहीं ' ' लगभग चीखते हुए उसने आँखें खोल दीं।

आशंकाओं से बदराये आकाश-बरामदे से पुराने मरीज जैसा सूरज किसी तरह कमरे में रेंग आया था। बेहद मैलापन लिये उसकी पीली और उदास धूप भी इस समय मृत्युंजय को बड़ी भली लगी। उसने सोचा अब तक पत्र लेटर बॉक्स से निकल चुका होगा लेकिन गाड़ी जाने में अब भी एक घन्टे की देर है। उसने झुक कर खाट के नीचे से अपनी पुरानी अटैची बाहर खींच ली और धूल साफ करने के बाद उसमें जमा सफर में काम न आने वाली तमाम चीजें निकाल कर एक तरफ रखने लगा।

भगवतीलाल व्यास,
विद्या-भवन स्कूल,
उदयपुर (राज०)

11

अपनत्व

●

विश्वनाथ पाण्डेय 'प्रणव'

वह शहर से दूर एक छोटी सी कॉलोनी मे रहता था। शहर की सी चहल-पहल वहाँ न थी, पर्याप्त साधन न थे, शान्ति थी। जीवन की सरसता न सही सरलता अवश्य थी, किन्तु शहर की सी घुटन न थी। स्वच्छन्द वातावरण उसे प्रिय था। इसीलिए शहरी वातावरण छोड़कर उसने दूर…… … काफी दूर एक छोटी-सी कॉलोनी मे रहना पसन्द किया था।

उस दिन जब वह अपनी कॉलोनी से बाहर निकला, रात के सवा दस बज चुके थे। अपर्याप्त समय और साधनो की कमी, ऊपर से कड़ाके की सर्दी—स्टेशन तक पहुंच सकना मुश्किल लग रहा था। सड़क पर मन्द-मन्द प्रकाश चारों ओर फैल रहा था। उसने रुक कर क्षण-भर के लिए इधर-उधर देखा………एक भयावना सन्नाटा…………कलेजे को कपा देने वाली हवा की सनसनाहट …………उसे भय-सा लगने लगा। अटैची को कन्धे पर रखता हुआ वह स्टेशन की तरफ भाग चला।

स्टेशन की तरफ भागने से लेकर गाड़ी में बैठने तक वह इस तरह अतीत की दुनिया में खोया रहा कि उसे कुछ पता ही नहीं चला। अचानक ही जब प्लेटफार्म पीछे खिसकने लगा, उसे तब अपनेपन का ख्याल आया। इस बीच पता नहीं वह किस दुनिया में खोया रहा। उसने देखा, लोग ट्रेन में चढ़ने के लिए अब दौड़ रहे हैं। खोमचे वाले………चाय वाले… …सभी पीछे खिसकते जा रहे थे। बुक-स्टाल, वेस्ट केबिन…………आउटर सिगनल…… … एक-एक करके सभी पीछे छूटने गए और कुछ ही क्षण में स्टेशन भी उस सघन अन्धकार मे ओझल हो गया। उसने खिड़की बन्द कर ली, क्योंकि

प्रतिध्वनि—3

र्द हवा के झोंकों से उसका शरीर गनगनाने लगा था। कम्पार्टमेन्ट के अन्दर उसने चारों ओर निगाह दौड़ाई ....कुछ व्यक्ति बातें कर रहे थे .... कुछ समाचार पढ़ रहे थे.... कुछ तास खेल रहे थे .... सोने वालो की भी कमी न थी। उन सब को देख कर उसे भी ख्याल हो आया कि वह भी उन्ही की भांति यात्रा कर रहा है। "किन्तु, वह कहां जा रहा है?" सहसा उसकी आत्मा ने प्रश्न किया।

इस प्रश्न से वह चौंक पड़ा। धीरे-धीरे उसके मानस-पटल पर अतीत की स्मृतियाँ छाने लगी। उसे ख्याल आया—चौदह वर्ष पूर्व भी वह इसी भांति एक दिन ट्रेन मे सवार हुआ था। किन्तु दोनों अवस्थाओं मे पर्याप्त अन्तर था। उस समय वह घर से नाराज हो भाग निकला था। उसका मन दुखी था। फूफाजी ने पीटा था, बुआ को अच्छा नही लगा था, लेकिन वह करती भी क्या? ? औरत जो ठहरी। हाँ, बुआ की लडकी दुलारी ने, जो उस समय छोटी-सी अत्यन्त चंचल, किन्तु एक अबोध बालिका थी, फूफाजी से नाराजगी प्रकट की थी और उसके साथ बैठकर रोई भी थी। किन्तु, उसके मन की वेदना कम नही हुई थी और उसी रात वह घर से भाग निकला था। तब और अब मे एक लम्बा जमाना खप चुका था। उसने इस बीच पढ़ाई-लिखाई भी कर ली थी और एक कार्यालय मे बाबू भी बन गया था.... ....। वह बराबर अतीत की स्मृतियों मे डूबता जा रहा था। उसे महामारी के प्रकोप का ख्याल हो आया, जब वह आठवीं कक्षा मे पढ़ता था। दो घण्टे की बीमारी मे दादी चल बसी। पिता बहुत पहिले ही इस दुनिया को छोड़ चुके थे—देखते ही देखते माँ भी उसे अनाथ कर गई। कितना भयावना समय था वह। यदि उसकी बुआ ने उसे अपने यहा न बुला लिया होता, तो शायद वह भी उन्ही के सदमे में चल बसता। वह बहुत जल्दी ही बुआ के गाँव के लड़को मे घुल-मिल गया था। धीरे-धीरे दिन बड़े आराम से कटने लगे थे। किन्तु, पढ़ाई वही समाप्त हो चुकी थी। बुआ की हालत अच्छी नही थी कि उसे और पढ़ा सकती। फूफाजी को उसका वहाँ रहना कम अच्छा लगने लगा था। बात-बात पर उसे झिड़कियाँ और गालियाँ देते थे। लेकिन, वह था कि सब कुछ सहन करने का आदी बन गया था। कभी-कभी रोकर अपने विपण्ण मन का बोझ हल्का कर लेता था। कभी भी उसका मन किसी बात की बगावत करने को तैयार नही हुआ। किन्तु जब उस दिन उसके फूफाजी ने अकारण ही उसे पीटा, तो उसका अशान्त मन

बगावत कर उठा। मन मे आया कि खूब गालियाँ—जिनके लिए वह समर्थ था, दे और भाग निकले। लेकिन हिम्मत नहीं पड़ी। दिन भर जैसे-तैसे बिताकर उसी रात घर से भाग निकला। चौदह वर्ष पूर्व की वह अवस्था कुछ और ही थी और आज की कुछ और! आज वह अपने उसी गाँव, अपने उसी प्राचीन घर को जा रहा था।

उसके दिल मे अपार हर्ष था। उसे रह-रह कर ऐसा लग रहा था, जैसे बहुत दिनों बाद उसकी खोई हुई सम्पत्ति मिलने जा रही है। वह कल्पना के सुखद सागर मे हिलोरें लेने लगा—"मुझे देखते ही फूफाजी कितने खुश होंगे। बुआ मुझे गले से लगा कर वर्षों का परिताप आंसुओ से बहायेगी और दुलारी, जो अब युवती बन गई होगी, दौड़कर—लेकिन नहीं, हर्ष-मिश्रित संकोच लिए हुए मेरे पास सहमी-सी आयेगी और मैं उसे वह साडी और बहुत से खिलौने, जो उसके लिए खरीदे गये हैं, उसके हाथो मे रख दूँगा और वह स्नेह से मुझे निहारने लगेगी।" यही सब सोचते 2 उसे नींद आ गई और वह अटैची पर सिर रख कर सो रहा।

प्रातः काल गाड़ी एक छोटे से स्टेशन पर रुकी। अटैची लेकर वह बाहर आया। ताँगे वाले सवारियों को पटाने मे लगे हुए थे। उसने अपने गाँव तक के लिए एक तांगा किया और उस पर बैठ कर गाँव की तरफ चल दिया। गाँव कोई चार मील दूर था। रास्ते मे उसके मन मे तरह-तरह के प्रश्न उभर रहे थे—क्या फूफाजी उसे देखकर खुश होंगे? दुलारी शायद ही उसे पहचान सके······ ······। सहसा उसका ध्यान रास्ते के दृश्यों पर गया। उसने देखा, सड़क के दोनों ओर वे बड़े-बड़े पेड़ अब नहीं थे—उनके स्थान पर छोटे-छोटे नये पेड़ लग रहे थे। रास्ते में आने वाली वह प्याऊ भी नहीं दिखाई दी, जहाँ गाँव से स्टेशन जाते समय वह अक्सर बैठकर सुस्ताया करता था। अचानक उसका गाँव आ गया उसने ताँगे को गाँव मे ले जाना उचित नहीं समझा और उसे वहीं छोड़ कर पैदल ही गाँव मे घुस पड़ा। वह मोहनराम के दरवाजे पर भी नहीं रुका। एक बार घर पहुंच कर घर वालों से मिल लेने के लिए उसका दिल उतावला हो रहा था। उसका घर भी आ गया। लेकिन यह क्या? फूफाजी के घर की जगह एक सुनसान खंडहर विराजमान था। उसे देखते ही उसका कलेजा एक अज्ञातशिव [illegible] से कांप उठा—हे भगवान! इस घर का, घर के लोगों का क्या हुआ?

विषण्ण मन और उदास चेहरा लिए हुए वह मोहन राम के यहाँ पहुंचा। वह उसका बचपन का मित्र था। मोहनराम खेत से चारा लेकर लौटा था। बाजरे का गट्ठर नीचे पटक कर वह नीम के चबूतरे पर बैठ गया। पगड़ी उतारते समय उसकी निगाह उस पर पड़ी। वह सामने की नहान-चौकी पर बैठा था, जहाँ अक्सर राहगीर बैठ कर सुस्ताया करते थे। मोहनराम ने राहगीर समझ कर ही उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसने समझ लिया कि मोहनराम ने उसे पहचाना नहीं। "मोहन भैया! पहचाना नहीं आपने शंकर को? "उसने मोहनराम को सम्बोधित करते हुए कहा। "शंकर.......!" उसका मन विचारने लगा—"कौन शंकर?" उसने ध्यान से उसकी तरफ देखा—बार-बार घूरा, लेकिन कुछ समझ में नहीं आया। वह उसे लगातार देखता जा रहा था। माथे पर पड़ रही बल—रेखाओं से लगता था वह अतीत की बातों में से कुछ खोज रहा था। अचानक उसका चेहरा खिल उठा ".....शंकर.....! मेरे दोस्त.....! दोनों गले से लिपट गये।

मोहनराम ने जो कुछ बताया था, वह सब अप्रत्याशित और कंपा देने वाला था। उसे रह-रह कर सरपंच पर क्रोध आ रहा था। फूफाजी की मृत्यु के बाद बुआ की जमीन पर अधिकार करने वाला सरपंच कौन होता था? काश मैं उस समय यहाँ होता! उसका चेहरा क्रोध से तमतमा आया। भुजाएं फड़कने लगी। उसके दिल में उस समय प्रतिकार की भावना सुलग रही थी। बुआ के अपमान का, सरपंच से बदला लेने की भावना से वह मर मिटने को तैयार था। सहसा उसकी आत्मा ने कहा—'मूर्ख! इस तरह किसी पर व्यर्थ में गुस्सा क्यों उतारते हो? यदि एक व्यक्ति इतना पतित हो सकता है, तो क्या और लोग भी ऐसे पतित नहीं हो सकते, जो तुम्हें किसी के बारे में गलत भड़कायें? "बात सही थी। इसमें सार था। 'लेकिन', उसने सोचा, 'एक मित्र, वह भी बचपन का, जो कुछ कहता है, सही कहता है। बचपन की मित्रता बड़ी पवित्र होती है। उसने पल भर में ही आत्मा की सारी बातों को झुठला दिया। "काश, बुआ आज जीवित होती!" उसने एक गहरी सांस ली। इस बार आत्मा ने फिर साहस किया—"झूठा अपनत्व दिखाने वाले, क्या उचित नहीं होगा कि एक बार दुलारी के यहाँ जाकर सही बातों की जानकारी ले आओ!" उसने आत्मा की आवाज को फिर से सुना; कुछ अनुभव किया और इस बार वह इस आग्रह को टाल नहीं सका।

दिन के दो बजने वाले थे। गाँव आने वाला था— दुलारी का गाँ
अनेक संकल्पों और विकल्पों के बीच झूलते हुए उसने गाँव की सीमा
प्रवेश किया। दृश्य लुभावने थे। प्रकृति की कृपा थी। चारों ओर फैली
हरियाली, जौ, गेहूँ, सरसों, मटर········फूलों की बहुरंगी सुषमा पर मंड
भँवरों की मधुर गुञ्जार··············· सब कुछ हृदय को जीत लेने वाला था
"दुलारी कितनी खुशी होगी इस गाँव में आकर?" उसने सन्तोष की
गहरी सांस खींचते हुए सोचा और आगे बढ़ चला। गाँव में घुसने से प
उसने अटैची हाथ में ले ली। बेचारे कन्धों को राहत मिली।

मोहन राम के बताये हुए संकेतों के आधार पर वह एक घर के सा
रुका। द्वार पर कोई नहीं था। उसने सोचा अन्दर चलकर दुलारी से मिलू
लेकिन····, पल भर को वह सहम सा गया। देहरी के पास आकर उ
अन्दर की ओर झांका, आँगन में खाट पर एक युवती अपने छोटे से मुन्ने
स्तनपान करा रही थी। 'ओफ! धन्य हो ईश्वर!' उसका मन खुशी
नाच उठा। उसने दुलारी को पहचान लिया। अपनत्व पुकार उठा—दुला
····। युवती ने गर्दन घुमा कर देखा—एक आदमी देहरी पर था। वह
खाट पर से नीचे उतर गई। सिर नीचे झुका था, मुंह पर छोटा-सा घूंघट
सब कुछ वही नारी—सुलभ लज्जा के प्रतीक। उसने धीरे से पूछा—"कौन

"पहचाना नहीं, दुलारी····अरे, मैं···मैं····।" उसके भाव मुंह में
अटक कर रह गए।

"आप कौन हैं, मैं नहीं जानती। कुछ देर बाद आइयेगा, अभी घर प
कोई नहीं है।" युवती ने उत्तर दिया।

"अरे, मैं शंकर हूँ दुलारी—शंकर।"

औरत ने हल्का-सा घूंघट उठाकर देखा, फिर पूरा खोलकर देखा। उसक
चेहरा तमतमा आया। उसके शंकर में और इस शंकर में बहुत अन्तर था
वह कितना भोला और दब्बू था, और यह? यह कितना चंट लग रहा था
उसने आक्रोश पूर्ण शब्दों में ही कहा—"नहीं, तुम झूठ बोलते हो, तुम श
नहीं हो, बाहर चले जाओ।"

उसे लगा, जैसे हथौड़े से किसी ने उसके सिर पर प्रहार किया है। उसक
सिर भन्ना उठा। उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि दुलारी से ये शब्द

अब शंकर मुझसे फिर मिलने के लिए नहीं आयेगा ? वह फूट पड़ी .... हाय, शंकर..............भैया............!

कुछ देर बाद, एक लड़का अन्दर आया ! उसने औरत को कपड़ों का एक गट्ठर दिया । औरत के मुर्झाये चेहरे पर प्रसन्नता की एक लहर दौड़ गई। लड़के का पिता उसके पति के साथ ही कलकत्ता में व्यापार करता था । वह (लड़के का पिता) पिछली रात को ही कलकत्ते से लौटा था । औरत ने अनुमान लगाया कि उसके पति ने ही इन कपड़ों को उसके पिता के साथ भेजा होगा । "लो इतने दिनों बाद घर का ख्याल तो हुआ ।" कह कर गट्ठर खोलने लगी । लड़का होशियार था । औरत के कहने का तात्पर्य वह समझ गया ! उसने सहमते हुए कहा—"रमेश काका ने इन कपड़ों को नहीं भेजा है ।" तो, किसने दिया है ?' आश्चर्य से उसने पूछा ।

"इस गट्ठर को एक आदमी ने मुझे स्कूल पर दिया था । उसने इसे तुम्हें देने को कहा था और कहा था कि कह देना—तुम्हारे मामा का लड़का शंकर आया था । उसी ने इन कपड़ों को दिया है ।' लड़का कुछ और कहना चाहता था, लेकिन, चुप हो गया । औरत ने उसके भावों को पढ़ लिया, "कुछ और कह रहा था ?"

'हां, वह जाते समय रोने लगा था । कहा था कि दुलारी से कह देना वह फिर कभी आयेगा ।' लड़के ने दुःखी होते हुए कहा और बाहर चला गया ।

साड़ी ....ब्लाउज .. ....कपड़े........ खिलौने .. ... फ़ोटो........ बिखरे पड़े थे । वह उन्हें एक-एक कर देख रही थी । उसकी निगाह फोटो पर पड़ी । उसने उसे हाथ में लेकर देखा—वह शंकर का बचपन का फोटो था । वह सिसक पड़ी···· ····शंकर ही तो था ! हे भगवान, मैंने क्या किया ? खोये हुए शंकर को पाकर भी नहीं पहचान सकी और डांट कर घर से बाहर" ···· ···· । वह और भी रोने लगी ।

और शंकर ! धूल भरे रास्ते को तय कर रहा था । वह अपने आप पर सोच रहा था "मैं क्यों आया था यहां ? क्या अपने भी पराये हो सकते हैं ? .... लेकिन, नहीं ! मैं दुलारी का कौन हूँ ? कुछ भी तो नहीं ! दूर का एक सम्बन्धी । यह अपनत्व भी कैसा है.... ... .. ? वह खिलखिला कर हँस पड़ा । संध्या होने वाली थी । मंजिल दूर थी, समय कम था । उसने अपनी रफ्तार तेज कर दी ।

o

12

शीशार्पण

धर्मेन्द्र पाल सिंह मदौरिया

महाराजा विजयपाल ने सेनापति के साथ शिव-मंदिर के विशाल प्रांगण मे प्रवेश किया। प्रांगण पुष्प-लताओं से अलंकृत किया हुआ था तथा प्रवेश-द्वार अशोक-पल्लवों एवं बेल-पत्तों से सुसज्जित था। सरदारो, सामन्तों तथा सैनिकों ने दोनों पार्श्वों मे पंक्तिबद्ध खड़े होकर महाराजा का स्वागत किया महाराजा ने आगे बढ़ कर कमल-स्तोत्रपुष्प मूर्ति पर चढ़ाया और आंख मूँद शिव-स्त्रोत उच्चारण करते हुए विजय की कामना की। फिर मूर्ति के ऊपर भूलते विशाल घंटे को ध्वनित कर जयघोष किया। प्रत्युत्तर मे हर-हर महादेव का गगन-भेदी शब्द गूँज उठा। जयघोष के शान्त होने पर महाराजा विजयपाल ने सेनापति की ओर गर्दन घुमाकर पूछा, "कहो गुप्तचर ''' क्या समाचार लाये ?" सेनापति ने सिर झुकाकर अभिवादन किया और कहा, "श्रीमन् ! मुसलमान दुर्ग पर धावा करने के लिये आ रहे हैं। दो तीन पहर में उनकी सेना यहाँ पहुंच जायेगी। इससे पहले हमें पहाड़ियों के मध्य उनकी सेना रोक लेनी चाहिये।"

"वीरों ! आज गजनी के मुसलमान अबुबक्र बुखारी के नेतृत्व में हमारी देव-भूमि को पद्दलित करने एवं मूर्तियाँ खण्डित करने आये हैं। इस समय मुझे तुम्हारी सलाह की आवश्यकता है, अतः मेरी बात का निसंकोच होकर जवाब दो। क्या तुम यह पसन्द करोगे कि कोई तुम को धर्म को एवं आस्था के केन्द्र, मंदिरों को असहाय अवस्था मे पैरों से रौंदे।" महाराज ने उपस्थित जन-समुदाय से पूछा।

समस्त सरदारों, सामन्तों एवं सैनिकों ने तलवारें म्यान से निकाल कर

एक स्वर में कहा, "हमारी तलवारें अभी कुंठित नहीं हुई हैं। अभी शत्रु का शिरोच्छेदन करना जानती हैं। यह कभी नहीं हो सकता कि हमारे मंदिर मुसलमानों के पैरों तले रौंदे जाएं और हम एक दूसरे का मुँह देखते रहें। हर राजपूत अपनी आन व शान के लिये जान हथेली पर लिये रहता है।"

"मुझे आप लोगों से ऐसी ही आशा थी। हमने अपने बाहुबल से अनेक प्रचंड आक्रमणों को झेला है। अतः इस भूमि को किसी हालत में भी तुर्कों से पददलित नहीं होने देंगे। इसके लिये हम बड़े से बड़ा बलिदान देंगे। इस बहाने नये दुर्ग को रक्त का टीका भी लगा दिया जाएगा। आज रात भर में लुहारों से अपने हथियार पैने करवा कर बिजलियों से आलिंगन करने के लिये तैयार हो जाओ। मैं कल रणस्थल में ही तुम्हारी तलवारों की शक्ति का निरीक्षण करूँगा।"

मथुरा एक बार मुसलमानों द्वारा लूटी जा चुकी थी। भावी आक्रमण को ध्यान में रखते हुए विजयपाल ने पहाड़ियों के मध्य पर विजय मंदिर गढ़ बनवाया था। इस दुर्ग ही के शिव-प्रांगण में भोर होते ही वीरों के बाँके दल उमंग में इठलाते हुए एकत्र हो गये। उनके अंग-अंग से तरुणाई फूट रही थी। ठीक समय पर महाराजा विजयपाल सैनिक वेश में पधारे। उनके पीछे कुछ सामन्त, उमराव व सरदार थे। जयघोष के बाद महाराजा ने अपनी चिर-संगिनी तलवार को चूम श्रद्धाभिभूत स्वर में कहा, "वीरो, तुर्कों के हृदय हिन्दू-जाति के प्रति घृणा से भरे हुए हैं। वे हमारे गौरव को मिटाना चाहते हैं। पहाड़ियों के उस पार वे हमारी मातृभूमि को पददलित करने के लिये खड़े हैं। आज के युद्ध में प्रत्यावर्तन नहीं है, जिसे लौटना हो अभी लौट जाय।"

महाराजा के इन शब्दों को सुनकर एक साथ कई सैनिक खड़े हो गये और कहने लगे, "राजेन्द्र शिरोमणि को हमारे पौरुष का अपमान नहीं करना चाहिये। हम प्राण देने यहाँ आये हैं न कि प्राण बचाने। जब तक हमारे रक्त में शौर्य है हम विधर्मियों को एक पैर भी आगे नहीं बढ़ने देंगे।"

महाराजा विजयपाल ने सैनिकों की ओर दृष्टि डाली और सेनापति से कहा, "सेनापति ! मैं दुर्ग-रक्षा का भार तुम्हें सौंपता हूँ। इसकी सार-सम्भाल

अब तुम्हें करनी है। आज मैं अपनी आँखो से रणक्षेत्र मे बिजली सी गिरती तलवारो को देखूँगा।"

"आप निश्चिन्त रहिये। जब तक मेरे हाथ मे यह पुश्तैनी तलवार है तब तक किले पर किसी तरह की आंच नही आने दूँगा।" सेनापति ने विश्वास-पूर्वक कहा।

"ठीक है मैं भी हाथ में खड्ग लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि आततायियो को धूल मे मिला कर विजय-पर्व मनाऊँगा। तथा विजय की खुशी में प्रसाद के रूप मे अपना शीश काट देश-सेवा में अर्पित कर दूँगा।"

उपस्थित जन-समुदाय ने चिल्लाकर कहा, "नही नही,····यह नही होगा। इन तलवारो के होते दुनियाँ की कोई शक्ति पावन स्थानों पर कुदृष्टि नही डाल सकती। किसका साहस है जो इन तलवारो के नीचे से बच कर निकल जाय। आप ऐसी कठिन प्रतिज्ञा मत करिये।"

"नही सरदारो। जिस प्रकार छूटा हुआ तीर वापिस नही आ सकता उसी प्रकार कहे हुए शब्द वापिस नही लिये जा सकते। राजपूत मरना जानता है पीछे लौटना नहीं। आप घबराइये मत भगवान से विजय की कामना कर पहाड़ियो के उस पार खड़ी शत्रु सेना पर टूट पडो। देरी मत करो······एक भी बचने न पाये। महाराजा के इन शब्दों के साथ नगाडे बज उठे। रण-भेरी गूँज उठी। पल-भर मे ही राजपूती सेना पहाड़ियो के उस पार थी।

सेनाओं के आमने सामने होने पर महाराजा ने नगी तलवार उठा कर कहा, "देखते क्या हो ? टूट पडो····एक भी बचने न पाये।" बोलो हर-हर-महादेव। महाराजा की भीम गर्जना के उत्तर में हर-हर-महादेव के जय-घोष से रण-स्थल को गुँजा दोनो सेनायें भिड गईं। वीरों के भुज-दड फड़क उठे। छपाछप तलवारें चलने लगी। मुंड कट-कट कर गिरने लगे। रण-स्थल भयकर चीत्कारो से भर गया। राजपूतों के सिर धड़ से अलग हो जाते, पर कबन्ध उसी प्रकार तलवारें चलाते रहते। यह देख प्रतिपक्षी भय से चिल्ला उठते। कुछ ही पलो मे सैकड़ों काल के ग्रास बन गये। भयानक नर-संहार से रण का प्रांगण रक्तिम हो उठा। लाशें रक्त में तैरने लगी। श्वान शृगाल व गिद्ध लाशो को

ललचाई दृष्टि से देख कर संध्या का इन्तजार करने लगे। ऐसा प्रतीत होता था मानो महा भैरव अपना खप्पर शोणित से भरने के लिये वहाँ आ विराजे हों।

महाराजा विजयपाल जिधर से निकलते उधर रास्ता साफ हो जाता। घमासान युद्ध में राजपूत रण-बाकुरों की फौलाद के आगे विधर्मी टिक नहीं सके। उनके पाँव उखड़ने लगे। तभी विजयपाल अपना घोड़ा बढ़ा कर मुसलिम सेनापति के सामने ले आये और चिल्लाकर कहा, "सावधान! अगर तुम्हारी छाती में दम है तो संभालो मेरा आघात।"

तुर्क सेनापति ने 'अल्ला हो अकबर' का नारा लगा कर क्रोध में भर तलवार का भरपूर वार किया। महाराजा ने वार को ढाल पर ले अपनी गुर्ज से सेनापति के लोहधारी सुरक्षित टोप को चकनाचूर कर दिया। वह सम्भले इससे पहले खाडे का वार छाती के कवच को भेदता हुआ धस गया और सेनापति का सिर कटे वृक्ष की भांति धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। सेनापति के गिरते ही शत्रु-सेना भाग खडी हुई। परम्परा के अनुसार भागते हुए शत्रु पर वार नहीं किया गया।

महाराजा ने हर''''''हर''''''महादेव के जयघोष से विजय का स्वागत किया। प्रत्युत्तर में जयघोष की तुमुल ध्वनि पहाड़ियों में गूंज उठी। नगाडची अपने नगाड़ों से दिशाएं बहरी करते हुये आगे चलने लगे। सैनिक हर्ष में झूम उठे। आंखों में प्रसन्नता व आल्हाद लिये ताल-बद्ध नृत्य करते-करते शिव-प्रांगण में एकत्र हो गये। वहाँ विजयोत्सव मनाया गया। घी से भरे सैकड़ों स्वर्णदीप जगमगाने लगे। शंख व घड़ियाल बजने लगे। महाराजा विजयपाल के नेत्र-कमल खिल उठे। उन्होंने मूर्ति के चरणों पर अपने ललाट को रख कर प्रणाम किया। प्रार्थना के बाद हर्षित हुए उपस्थित लोगों को कहा, "मित्रो! मुझे तुम्हारी शक्ति पर गर्व है। आज तुमने अपनी तलवार से मातृभूमि एवं मर्यादा की रक्षा कर क्षत्रिय जाति को उज्ज्वल किया है। तथा जिन वीरों ने धर्म-रक्षार्थ अपने प्राण-बलिदान किये हैं उनकी कीर्ति [illegible] रहेगी। उनके बलिदान से मातृ-भूमि की प्रतिष्ठा स्थापित हुई है। यह सब भगवान के आशीर्वाद का ही फल है कि हमने रणांगण में विधर्मियों को यह बता दिया कि तलवार के जोर से क्षत्रियों को गुलाम

[illegible]

नहीं जा सकता। आज विजयोत्सव मनाया जा रहा है यह बडे ही आनन्द का अवसर है। सबके मुखो पर प्रसन्नता छिटक रही है। इस खुशी मे मैं आज कमल की जगह त्रिभुवनपति शकर को अपना विजयी शीश अर्पण करता हूँ। कोई कुछ बोले इससे पूर्व उनकी तलवार चमकी और चमक के साथ महाराजा का शीश कृतज्ञता स्वरूप-महादेव के चरणो मे गिर पडा। सैनिको ने देखा कबन्ध हाथ जोड़े मूर्ति के समक्ष खडा है।

प्रांगण मे निस्तब्धता छा गई। सबने मत्रमुग्ध होकर इस दृश्य को देखा। उनकी आंखें भरी हुई थी तथा सिर श्रद्धा से झुके हुए थे। ●

घर का पता :—
धर्मेंद्र पाल सिंह भदौरिया
ए/15 श्री करणपुर

शाला का पता:—
स/अध्या
प्रा. पाठशाला 15 ओ
पं. स. श्री करणपुर

"अच्छा फिर बाद में ''!" उसने पसीना पोंछा अपने छोटे से रूमाल से '

"अभी कह ही डालो न तुम भी कमाल करती हो''''यहाँ कोई सुन नही पाएगा।''''"

"नहीं''''अभी नही फिर ''''।" वह किसी आशंका के भय से फुसफुसाई।

लड़के को गुस्सा आया कि अजीब लडकी है पूछना भी चाहती है, पूछती भी नही''''! लड़की भी सोच रही थी, अजीब है यह, कह दिया कि यहा नहीं पूछ सकती, कोई सुन ले तो गजब हो जाये। वह बोला—'अच्छा फिर कह देना ''''।'

फिर वे दोनों किताबें निकाल कर पढ़ने मे डूब गये।

लडके का नाम अनुराग है और लडकी सरिता। दोनो यूनिवर्सिटी की मानी हुई हस्तिया। एक साहित्यकार है तो दूसरी स्पोर्ट्स की चैम्पियन! —

एक दिन अनुराग लॉन में खड़ा था। मि. मल्ला का पीरियड था वह गया नही, और अगला पीरियड मिसेज चौबे का था, जो छुट्टी पर थी। उसने सोचा वह लॉन पर बैठेगा। उसे एकात पसद था।''''सरिता ने उसे लॉन पर देख लिया था। वह भी वही चली आई। दोनो की नजरें उठी, · एक दूसरे को देखा।

"आप मुझ से कुछ कह रही थी उस दिन'''', यहाँ एकांत है कोई सुन नहीं पाएगा।''' "

"जी''''''''बात यह है कि, आप मानवीय सम्बन्धो को किस परिभाषा से पुकारते हैं?"

"'प्रेम' शब्द से।" वह बोला। पर उसके कुछ समझ मे नही आया इस प्रश्न के पूछे जाने का आशय।

"और यदि यह जीवन मे न हो तो?"—जिज्ञासु बालक की तरह सरिता ने दृष्टि उठाई।

"तो " फिर एक शुष्क रेगिस्तान की कल्पना कर ली जाए!"''''

"और ऐसी जिंदगी जी जाये तो?"

"इससे मौत बेहतर है?''''

"अच्छा, तो इसका अर्थ है कि प्रेम आवश्यक अंग है मानवीय सम्बन्
धों बनाये रखने के लिए।"

"नितान्त आवश्यक ! आप किसी भी दार्शनिक को ले लीजिए, उसने प्रे
को महत्वपूर्ण बनाया है जीवन के लिए !

"तो सुनिये, मैं आपसे प्रेम करती हूँ।" वह लजा गई।

"जी... जी "।" अनुराग को लगा जैसे एक स्वप्न चल रहा हो साम
साकार होकर।

'ठीक ही तो कहा,'" मैं आपसे प्रेम करता हूँ—क्योंकि मानवीय सम्बन्धों का प्रतीक प्रेम है और हर दार्शनिक ने इसका समर्थन किया है।

अनुराग ने झुक कर एक फूल तोड़ा ! उसे देते हुए बोला- 'स्वीकार है आपका प्रेम''''इसलिए कि मैं भी आपसे प्रेम करता हूँ। पर याद रखिये यह फूल जो आपको दे रहा हूँ, यह केक्टस् में बदल जाएगा। जिस दिन भी आप ने बेरुखी दिखाई और मेरा दिल तोड़ा तो''''

"यह गुलाब ही रहेगा अनु''''
फिर वे एक दूसरे की आँखों में डूब गये''''। पर्दा उठ गया था।

(3)

एम. ए. की परीक्षाएं समाप्त हो गईं। ''''अब अनुराग जयपुर से चला जायगा अपने गांव। सिर्फ आज का दिन उसके साथ है और उदास प्रतिमा बनी हुई सरिता ! कॉलेज की बिल्डिंग कल इस युगल प्रेमी जोड़ी को नहीं देखेगी, यहां के फूल और कलियां जिन्हें वे सहलाते थे, अपने प्रेम के तोहफों के रूप में, यादों के प्रतीकों के रूप में एक दूसरे को देते थे, उनका अभाव महसूस करेंगे। अब शायद कोई हाथ नहीं बढ़ेगा उनको सहलाने। अब किसी की आँखों में उनका प्यार कांटे की तरह नहीं गड़ेगा। कल अनुराग चला जाएगा बहुत सी स्मृतियों को समेटे जिनके सहारे वह दिन काटेगा।

वे दोनो थके कदमों से आकर स्परेट केबिन में बैठ गए। पीयूष रेस्टोरेंट के इस केबिन में कितनी ही बार घंटों बैठे रहे हैं। वे घंटों मौन बैठे रहे हैं एक दूसरे के हाथों को हाथ में लिए और आँखों में देखते हुये " और, कल से यह रेस्टोरेन्ट भी नहीं देख पायेगा इन्हें।

"सरिता तुमने फिर पूछा था डैडी से····?"

"हा अनु" मैंने एक बार और प्रार्थना की थी····कि वे···"

पर····कुछ नही हुआ। वे कहते है···· मैं तुम्हारी बात बचपन मे ही तय कर चुका हूँ। अपने एक मित्र को उसके लडके के लिए वचन दे चुका हूँ।····' उसकी आखें डबडबा गई।

"सरि, मुझे दुःख है कि हमारा प्यार भी किसी फिल्म या नॉवल की स्टोरी की तरह बन रह गया। मैं कभी-कभी फिल्मे देखकर हसा करता था, पर यदि उस दिन रोया होता तो इतना दर्द नही होता"

"तुम जानते हो मैं मजबूर हूँ। क्या मैं नही टूट रही हूँ! क्या मुझे दुःख नहीं है उस डाक्टर से बधते हुए। काश कि मैं सिर्फ तुम्हारी रह पाती····" फिर वह फफक उठी।

"रोओ मत····।"

वह रोती रही और वह सोचता रहा····ऊपर चलते सीलिंग फैन को देखते हुए। बेयरा कॉफी ले आया वे पीने लगे। अनुराग को लगा, कॉफी आज कड़वी है। फिर उसने सोचा कॉफी कडवी नही है ···वक्त ने इसमे कड़ुवाहट घोल दी····और इस कड़ुवाहट को पीना ही होगा। और वह कॉफी हलक मे उतारने लगा। सरिता भी चुपचाप कॉफी के सिप ले रही थी।

'तुम टूटना मत····यह सोचना एक झोका था गुजर गया' वह बोली।

'इस टूटने का अहसास भी अच्छा है सरि, शायद कुछ नई चीज लिख पाऊँगा।"

"कभी जयपुर आना हो तो मुझसे जरूर मिलना और हां, मम्मी डैडी से बिना मिले मत चले जाना, उन्हे दुःख होगा।"

"जरूर मिलूंगा सरि, दुनिया से नाता थोड़ी न तोड सकता हूँ।"

"अच्छा अपनी नजरें तो उठाओ लाओ तुम्हे आँखो मे भरलूँ, क्या पता फिर इस तरह देख भी पाऊँ या नही?" सरिता के होठ थर-थरा गये। अनुराग ने आँखे ऊपर उठायी और फिर वे दोनो खो गये, समुद्र की गहराइयो मे···· जहां तूफान थे।

चार वर्ष बीत गये··········।

कहाँ अनुराग और कहाँ सरिता। ....वक्त नहीं ठहरता, चला जाता है अपनी गति से। कितने ही रहस्यों को अपने पेट में छुपाये। कितने ही अनुराग और सरिता टकराते हैं जीवन की राहों पर, फिर बिछुड़ जाते हैं कभी न मिलने को और यादें उनकी हवाओं में घुल जाती हैं।

सब्जी अंगीठी पर रखके, सरिता झाड़-पोंछ में लग गई कमरे की। अलमारी साफ करते हुए, एक किताब दिखी उसे! 'दर्पण'—अनुराग की लिखी हुई। उसने खोला उसे—एक गुलाब का फूल निकला, जो सूखा था और पंखुरियाँ बिखर गई थीं। सरिता को लगा वह किसी गुलाब को नहीं एक केक्टस् को देख रही है। वह सोचती है—कहाँ होगा अनुराग, क्या करता होगा, कभी मिला भी नहीं, क्या उसे मेरी याद आती होगी। सब्जी जल जाती है और वह सोचती ही रहती है। उसका पति जो डाक्टर है, चिल्लाकर कहता है—'अरे कहाँ हो मैडम? सब्जी जल रही है और इधर बच्ची भी रोये जा रही है।' वह झटपट किताब को रखकर भागती है और सब्जी को देखती है और बच्चे को सम्भालती है। फिर डाक्टर की ओर देखकर मुस्काती है। पर उसकी मुस्कान में दर्द था। डाक्टर कुछ नहीं जान पाता।

.... और कहीं अनुराग भी सोच रहा है दाढ़ी बनाते हुए सरिता के बारे में। "कहाँ होगी, मेरी याद भी आती होगी या नहीं? क्या दिन थे वे भी। कितनी अच्छी थी वह। काश एक बार मिलके बीते दिनों का अहसास कर पाता। .... पर अब मिलकर भी क्या होगा. वेदना और बढ़ जायेगी। वह एक डाक्टर की पत्नी है ......और मैं ... मैं भी तो एक अत्यन्त सुन्दर पत्नी का पति हूँ, जो मुझ पर जान देती है ... ।" और सरिता के ख्याल में अनुराग ने अपना गाल ही काट डाला ब्लेड से। पास बैठी मिसेज अनुराग चीखी—'ऐ ईश्वर, क्या करूं इनके सोचने की बीमारी के कारण परेशान हूँ। क्या सोच रहे थे, जो यह गाल ही काट डाला..........ठहरो,...मुझे पोंछने दो खून और अपने साड़ी के पल्लू को पानी में भिगोकर वह खून साफ करने लगती है—और अनुराग के हृदय में प्रेम उमड़ता है और सहसा वह पत्नी के हाथों को चूम लेता है।

और सोचता है—'जीवन क्या है? कल क्या था, आज क्या है?'

14

रिहाना

●

गोपाल शकुन

रिहाना के मस्तिष्क में राज का पत्र पाकर एक तूफानी सागर हिलोरें मारने लगा। उसे लगा जैसे दूर क्षितिज से उठती हुई विशालकाय लहरें हमेशा के लिये अपनी अतल गहराइयों में उसे छुपाकर उसके अस्तित्व को समाप्त कर देना चाहती हो। कंचुकी से निकाल कर उसने पत्र फिर से एकाग्रचित होकर पढ़ा। लिखा था—

"प्रिय रिहाना,

कौम या सम्प्रदाय के नाम पर किसी को ठुकराना एक महान अत्याचार है। विशाल भारत में आज अनेकों कौमें और अनेकों सम्प्रदाय हैं, किन्तु हम अनेक होते हुये भी एक हैं। आखिर हम हैं तो भारतीय! भारत के अन्तःकरण में अनेकों जातियाँ, अनेकों वर्ग एव अनेकों सम्प्रदाय एक होकर प्रेम-रस का पान करते हैं। कौम कोरा दिखावा है। सम्प्रदाय एक ढोंग है। एक पोल है जिसकी आड़ में न जाने कितने स्वार्थी पुरुष अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। इसी के पीछे न जाने कितने जघन्य अपराध हुये हैं तथा होते रहेंगे। आज के युग में कौम या सम्प्रदाय के नाम पर दुहाई देना, अपना उल्लू सीधा करना है। सिवाय भारतीय के मैं स्वय को किसी कौम अथवा सम्प्रदाय का नहीं मानता। हम भारतीय हृदय से सच्चे होते हैं। जो बात हमारे अन्तःकरण के तारों को झनझनाती है, वही स्वर-लहरी बनकर हमारी वाणी से झंकृत होती है। हमारा एक महान धर्म है – भारतीय धर्म।"

"तुम्हारे पत्र में तुम्हारे निश्चय को पढ़कर मुझे ऐसा लगा जैसे मुझे

गगन-चुम्बी प्राचीर पर चढ़ाकर एकदम नीचे धकेल दिया गया हो। तुम्हें मैंने जीवन-दान दिया। और भी तुम्हारे लिये न जाने मैंने क्या नहीं किया, किन्तु मैं इसे अपना धर्म मानता हूँ। हमारा सबसे बड़ा धर्म है परोपकार एवं दया। मैं तुम्हारे ही कारण अपने माता-पिता से लड़ाई मोल लेकर अलग हुआ। अलग-मे मकान लिया और फिर न जाने कितने स्वर्णिम स्वप्नों को संजोया, किन्तु तुमने अपने निश्चय से आज मुझे यथार्थ की भूमि पर ला खड़ा किया। मुझे इसका आभास तक न था कि यथार्थ इतना पीड़ा-जनक होगा। आज इसी यथार्थ की पीड़ा मे छटपटाते हुये मेरे पद्रह दिन तो व्यतीत होने को हैं जिन्हें सहन कर सकने की सामर्थ्य मुझ मेनहीं है। इसके अतिरिक्त जो तुमने मेरे मेरे साथ नाटक खेला है, उसका अन्त भी मैं तुम्हें दर्शा देना चाहता हूँ।"

तुम्हारे पत्र से विदित हुआ कि तुम परसों के रोज पाकिस्तान चली जाओगी। इसलिये तुम्हारे जाने से पूर्व ही मैं इस पत्र द्वारा अपने निश्चय को स्पष्ट किये देता हूँ कि कल सायं आठ बजे तुम्हारा राज अपनी भारत माता की गोद में हमेशा के लिये सुख की नींद सो जायेगा। ये मेरा दृढ़ निश्चय है। साथ ही मैं तुम्हारे सभी प्रेम-पत्र लौटा रहा हूँ, ताकि तुम्हें अपना भावी जीवन बनाने में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न हो।"

"अन्तिम बार—जयहिन्द।

आपका ही एक भारतीय

'राज' "

रिहाना ने पत्र पढ़कर फिर उसे कंचुकी के बीच खोंस दिया। चुपचाप बैठकर परिस्थिति पर गहन चिन्तन करने लगी। उसने सोचा—क्यों न राज के घर चलकर उसके माता-पिताको इस-परिस्थिति से अवगत करा दिया जाय? विचार तो ठीक था, किन्तु वह स्वयं से पूछने लगी—कि क्या उसमें इतना चारित्रिक बल है कि वह अपने खेले हुये नाटक के रंगमंच को दूसरे व्यक्तियों का अवलोकन केन्द्र बना सके? इसी कश्म-कश में उसका सारा दिन तथा सारी रात व्यतीत हो गई। वह रात को पूर्णतया सो नहीं सकी। प्रातः हुआ, मध्याह्न हुआ और अब यहाँ निश्चित संध्याकाल सामने था। क्या

घड़ी की सुइयों के साथ-साथ अपने तीव्रगामी पदचापों से भागता चला जा रहा था। रिहाना इस समय बड़े धर्म-संकट में थी। कलाई पर बंधी घड़ी की ओर दृष्टि डाली। छह बज चुके थे। उसने सोचा—क्या सचमुच राज अपनी कुरबानी दे देगा? अन्तःकरण से उत्तर मिला—हाँ, यह उसका दृढ़ निश्चय है।

इस विचार के साथ न जाने कहाँ से इतनी शक्ति आ गई कि वह अपना काला बुर्का डाल कर सीधे राज के घर की ओर चल दी। रास्ते भर न जाने कितने काल्पनिक भय उसको भयभीत करते रहे। राज के घर पहुंचते पहुंचते सात बज चुके थे। फाटक खोलकर जैसे ही उसने बाउन्ड्री मे प्रवेश किया उसकी सम्पूर्ण आशाओं पर तुषारापात हो गया। दरवाजे पर ताला लगा हुआ था। समय हमेशा उसका साथ देता है जो समय के साथ-साथ कदम मिलाकर चलता है। उसने माथा ठोका और कुछ समय के लिये दरवाजे के सामने सीढ़ियों पर बैठकर सोचने लगी कि अब वह क्या करे? उसकी समझ में उस समय कुछ भी नहीं आ रहा था। रिहाना ने उठकर पड़ोस वाली कोठी से ज्ञात किया कि सब लोग शहर मे ही किसी की शादी मे दावत में सम्मिलित होने के लिये गये हैं। अब आते ही होंगे। रिहाना को इससे कुछ धीरज हुआ।

रिहाना फिर वापिस सीढ़ियों पर बैठ कर अपने विचार में डूबने लगी। उसको स्मरण आया जब उसको रिक्शा से टक्कर लग जाने के कारण इतनी गम्भीर चोट आई थी कि उसे उसी समय इमरजैन्सी ले जाया गया था। जब वह बैड पर पड़ी अन्तिम सासें गिन रही थी तो डॉक्टर ने कहा था—'इनको खून चाहिये।' इस बात को सुनकर चचा शमीम तथा सभी रिश्तेदार अपनी गर्दन नीची किये खड़े रहे। किसी की ये जुर्रत नहीं हुई जो आगे आकर कहता—'मेरा खून ले लो।' और हाँ वह चचा का लड़का रमजान भी तो वहीं खड़ा हुआ सबका मुँह ताक रहा था, जिस पर चचा को बड़ा नाज है। उस पर वे दम भरते है। तब राज ही ने उस भीड़ में से आगे आकर कहा था—"डॉक्टर साहब' मेरा खून टैस्ट कर लिया जाय, यदि काम आ सके। वह इन्सान ही क्या जो इन्सान के काम न आ सके।"

वह सोचने लगी—अब मुझ पर इतना जबरदस्त पहरा? आखिर क्यों?

अब चचा कहते हैं—"बेटी रिहाना ज़रा सोचो तो हमारी कौम क्या है ? धर्म ईमान क्या है ? यदि तुमने राज के साथ शादी की तो हमारे नवाब खानदान की इज्जत धूल में मिल जायेगी।" मैं पूछती हूँ कि 'नवाब खानदान की इज्जत उस समय कहाँ चली गई थी, जिस समय सरे-आम एक हिन्दू जिसे तुम काफिर कहते हो, उसने अपना खून देकर मेरी जिन्दगी बचाई थी। धिक्कार है ऐसे खानदान पर, ऐसी कौम पर, ऐसे धरम-ईमान पर जो एक इन्सान की इन्सानियत को न पहिचान सके। मेरे वालिद इस जहाँ से रुखसत होते समय चचा शमीम को मुझे इसलिये नहीं सौंप गये थे कि मेरी मजबूरियों से नाजायज फायदा उठाया जाय ? मुझ पर जुल्म ढाये जायें। मेरा गला घोंटा जाय। मेरे पैरों मे जजीर डाल दी जाय।'

'ये सच है कि भारत मे सैक्यूलर स्टेट है। सच्चे मायने में एक जम्हूरियत का मुल्क है। सिकन्दर ने इस मुल्क काअमन लूटने के लिये एड़ी से चोटी तक का पसीना एक कर दिया, किन्तु उसे मुँह की खानी पड़ी। और हाँ, फिर सेना-पति सैल्यूकस की पुत्री कार्नेलिया ने एक सच्चे साहसी देशभक्त इन्सान चन्द्रगुप्त को वरण ही कर लिया। मैं सोचती हूँ भारत में राज जैसे न जाने कितने राज छुपे पड़े हैं जो इन्सानियत के नाम पर हँस हँस कर अपनी कुरबानी देने के लिये हमेशा तैयार रहते हैं।

आज उसे याद आया जब हम दोनों 'अपने वतन' का आखिरी शो देखकर लौट रहे थे तो राज ने कहा था—"रिहाना, मैं तुमसे जब भी मिलता हूँ या तुम से विलग होता हूँ, उस समय अभिवादन के रूप में यह स्मरण दिलाने के लिये कि हम हिन्दुस्तान के निवासी हैं—जयहिन्द करता हूँ, किन्तु तुम हमेशा मेरे इस अभिवादन के उत्तर में बस मुस्कराकर रह जाती हो। आखिर इसमे भी कोई राज है ?"—'नहीं नहीं वैसे तो इसमें कुछ नहीं ... । मैं इतना ही कह पाई थी कि वह बोला—"खैर कोई बात नहीं। मैं और कुछ सुनना नहीं चाहता, किन्तु यह समझलो कि 'जयहिन्द' एक सच्चे भारतीय हृदय की गूँज है। यह एक ऐसा शखनाद है जिसकी ध्वनि से चारो दिशायें गूँज उठती हैं।"

रिहाना को पता नहीं सोचते-सोचते कितना समय व्यतीत हो गया। अचानक कोठी के फाटक पर एक कार का हॉर्न सुनाई दिया। रिहाना भी

प्रतिध्वनि—3

विचार-शृंखला टूटी। उसकी चेतना लौटी। घड़ी पर दृष्टि डाली साढ़े आठ बज चुके थे। कार में से एक घबराता हुआ व्यक्ति भागकर अन्दर आया पूछने लगा—"वर्मा साहब हैं ?" रिहाना ने उत्तर में कहा—"नहीं हैं, मैं भी उनके इन्तजार में हूँ।" व्यक्ति ने घबराते हुये कहा—"अरे! उनके लडके राज का अभी-अभी एक ट्रक से एक्सीडेन्ट हो गया है। उसे इमरजेन्सी पहुंचा दिया गया है, पर हालत बहुत ही नाजुक है।" अच्छा मैं तो चला। वे लोग आ जायें तो आप उनसे कह देना।" व्यक्ति इतना कहकर अपनी कार लेकर चला गया।

इस समाचार को सुनते ही रिहाना को लगा जैसे काले सर्प ने उसे डस लिया हो। पैरों-तले से धरती खिसक गई। अधर सूख गये। चक्कर-सा आने लगा। सम्पूर्ण पृथ्वी घूमती-सी दृष्टिगोचर होने लगी। रिहाना ने स्वयं को सम्भालने का प्रयत्न किया तथा भावी-भय की आशंका से वह सीधी अपने घर की ओर चल दी। जिस डर से वह डरी जा रही थी वही डर विशाल काय पर्वत के समान मुँह फैलाये उसे निगलने के लिये सामने खड़ा था। सड़क पर पैर बहुत शीघ्रता से पड़ रहे थे, किन्तु आज उसे स्वयं का घर पास होते हुए भी कोसों दूर की लम्बाई में स्थित जान पड़ रहा था। वह सड़क के इधर उधर देखती हुई, घबराती हुई चली जा रही थी। उसे ऐसा आभास होने लगा जैसे चारों ओर से आवाजें आ रही हो—'पकड़ो! पकड़ो!! यही है वह खूंखार लड़की।' भय से उसका शरीर काँपने लगा। सारा बदन पसीने में लथपथ हो गया। रिक्शा वाला दूर से चिल्लाता चला आ रहा था—"बहिनजी, बचके! जरा बचके!!" परन्तु रिहाना को जैसे कुछ सुनाई ही नहीं दे रहा था। टक्कर होते-होते बची। जैसे-तैसे करके रिहाना अपने मकान पर पहुंच गई।

सामने बैठक में चचा नसीम अपना हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। रिहाना को देखते ही बोले—"रिहाना इतनी रात गये कहाँ गई थी ?" चचा की लाल-लाल आँखों को देखकर रिहाना ने कुछ नहीं कहा। वह सीधी अपने कमरे की ओर चली गई। इसके पश्चात् रिहाना को न जाने क्या-क्या बुरा-भला सुनना पड़ा। वह बन्द कमरे में पड़ी सब कुछ सुनती रही।

इमरजेन्सी दर्शकगण भरी हुई थी। कोई कुछ कहता कोई कुछ। राज के

माता-पिता भी एक कोने में खड़े हुए सिसकियाँ भर रहे थे। राज को कृत्रिम साँस दी जा रही थी। चोट अन्दरूनी थी। राज का सम्पूर्ण शरीर एकदम काला स्याह पड़ गया था। थोड़े-ही समय पश्चात् समाचार मिला कि राज की सांस लौट आई है। डॉक्टर रूप-सितारा ने बहुत परेशानियों के पश्चात् आखिर राज को मौत के मुंह से छीन लिया था। राज को दूसरे बैड पर ले लिया गया। आने जाने वालों का ताँता लगा हुआ था।

रिहाना बन्द कमरे में पड़ी सिसकियाँ ले रही थी। वह फिर सोचने लगी 'राज कितना अच्छा। एक बार चचा शमीम जब मुझ पर अपना भाषण झाड़ रहे थे। वह उस समय चुपचाप घर के अन्दर चला आया। चचा कह रहे थे—"क्या राज इस्लाम स्वीकार कर सकता है?" ये शब्द राज ने सुन लिये थे। चुपचाप सुनकर वह लौट गया था। दूसरे ही दिन मेरे कॉलेज आते समय मुझसे कहा था "कल मैंने चचा की बात सुन ली है। रिहाना, तुम जानती हो कि स्वतन्त्र भारत में सभी को अपने-अपने धर्म कीस्वतन्त्रता प्राप्त है। यह कितनी अच्छी बात है। स्वतन्त्र भारत का नागरिक आज कोई भी धर्म मान सकता है, क्योंकि सभी को समान अधिकार है। जब एक व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह अपना कोई-सा धर्म माने तो साथ ही उसका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह ऐसा कोई भी कार्य न करे जिससे दूसरे धर्म का हनन होता हो।"

राज स्वस्थ हो चुका था। उसने हमेशा के लिये बम्बई छोड़ दी तथा एक मिल मैनेजर बनकर भिवन्डी चला गया। भिवन्डी में अन्य सम्प्रदायों के कुछ लोगों के अतिरिक्त अधिकतर मिल में काम करने वाले हिन्दू और मुसलमान लोग ही थे। भाई-चारे से हिलमिल कर काम करते हुए सभी को देखते हुए राज को यहाँ सच्चा सुख प्राप्त होता था जिसके लिए वह अब तक तरसा करता था। एक बार ईद के अवसर पर उसने सभी सम्प्रदाय के लोगों को एकता का सन्देश देते हुए कहा—

"मेरे प्यारे भारतीयों—हम सब भाई-भाई हैं। हमें बापू का स्वप्न साकार करना है। हमारा धर्म एक है।

मानव को मानव के प्रति, मानव को पशु-पक्षियों तथा तुच्छ से तुच्छ प्राणी के प्रति और मानव को प्रकृति के प्रति दया करनी चाहिए।" हम हैं

राज ने जयहिन्द के साथ अपना भाषण समाप्त किया। इसके साथ ही तालियों की गड़गड़ाहट के साथ सारा वातावरण गूँज उठा।

आज पन्द्रह साल व्यतीत हो गये। एक युग बीत गया। त्यौहारों के अवसर पर भी हिन्दू लोग मुसलमानों के त्यौहारों में खुशी-खुशी भाग लेते और खुशियाँ मनाते। किन्तु आज अचानक ही भिवन्डी में साम्प्रदायिकता की आग भड़क उठी। राज तथा कई अन्य प्रमुख व्यक्तियों ने काफी रोक-थाम का प्रयत्न किया, किन्तु कमान से चला हुआ तीर फिर वापिस नहीं आ सकता। मकान कारखाने इत्यादि सभी जलाये जाने लगे। अग्नि ने धीरे-धीरे अपना प्रचण्ड रूप ग्रहण कर लिया। देखते ही देखते सारी नगरी जल उठी। राज का हृदय इस दृश्य को देखकर काँप उठा। विध्वन्स का इतना प्रचण्ड रूप हो जायेगा तथा झगड़ा एक तुच्छ-सी बात से आरम्भ होकर इतना भयंकर रूप ले लेगा, इसका किसी को भी आभास न था। यद्यपि राज ने बहुत सारे मजदूरों को सहायता के लिये भेजा तथा स्वयं भी भाग दौड़कर अग्नि से लोगों की सहायता करने लगा। किन्तु उसने देखा कि किसी को भी चाहे वह हिन्दू हो चाहे मुसलमान, कुछ भी नहीं सूझ रहा था। सभी को अपनी-अपनी जान के लाले पड़े हुए थे। कुछ परोपकारी व्यक्ति परोपकार करने में व्यस्त थे। चारों ओर से चीत्कार सुनाई देने लगी। प्रलय का ऐसा भयंकर रूप राज ने प्रथम बार देखा था, फिर भी वह भाग-भाग कर लोगों को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा रहा था।

राज के कपड़े फट चुके थे। शरीर कई स्थानों पर झुलस गया था, किन्तु उसे कुछ परवाह न थी। वह दौड़-दौड़ कर सभी की जान बचा रहा था। अग्नि धू-धू करके जल रही थी। उसने चारों ओर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया था। कोहराम मचा हुआ था। इसी समय राज को आग की लपटों के बीच एक औरत दिखाई दी। वह जोर-जोर से चिल्ला रही थी—"बचाओ, बचाओ।" शीघ्र ही राज ने उसे आग की लपटों से बाहर निकाल कर खड़ा किया, किन्तु ज्यों ही उस औरत ने अपना बुरका ऊपर किया। राज उसकी ओर अवाक्-सा देखता रह गया। अचानक ही अचम्भित स्वर में उसके मुँह से निकल पड़ा—"रिहाना तुम ?"

"हाँ राज ! मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ, मेरे दो बच्चे तथा उनका बीमार

बाप इस मकान में जले जा रहे हैं"—रिहाना ने हाँफते हुए कहा। राज ने एक बार उस घर की ओर देखा जिसके आधे भाग में आग लग चुकी थी तथा एक बार रिहाना की ओर, जैसे आज भी वह विलग होते हुए कह रहा हो—"जयहिन्द।" राज में एक अपूर्व स्फूर्ति उत्पन्न हुई और वह अपने प्राणों की परवाह न करते हुए कूद पड़ा उस जलती हुई होली में। कुछ ही समय पश्चात् वह एक व्यक्ति को अपनी पीठ पर लादकर तथा एक बच्चे को अपनी गोद में लिए हुए उस धुँये से निकल आया। उन दोनों को रिहाना को सौंप कर दूसरे बच्चे के लिए फिर उसने प्रयास किया। मकान के अन्दर जाकर बड़ी कठिनाई से उसने दूसरे बच्चे को भी खोज निकाला किन्तु आग तब तक पूरे मकान में लग चुकी थी। राज ने बाहर की ओर देखा आग ने उसका रास्ता चारों ओर से घेर लिया था। उसकी सांस फूलने लगी। उसने सीढ़ियों पर चढ़कर एक दीवाल का सहारा लिया। बच्चे को उसने सीने से लगा रखा था। दीवाल अभी तक सुरक्षित थी। लपटें बढ़ी चली आ रही थीं। उसने सोचा यदि तनिक भी देर की तो ये दीवाल भी चारों ओर से आग से घिर जायेगी क्योंकि इसके तीन तरफ तो आग लग चुकी थी। उसने दीवाल पर चढ़कर सामने की ओर देखा जहाँ रिहाना उस व्यक्ति को सहारा दिये हुए उसी की ओर देख रही थी। राज ने बच्चे को घुमाकर इस जोर से रिहाना की ओर फेंका कि बच्चा आग की सीमा से बाहर रिहाना के सामने एक फूँस के ढेर पर पड़ा। जब तक आग ने राज को चारों ओर से घेर लिया। उसका आधा शरीर जलने लगा। राज अब आग में पूर्णतया फंस चुका था। निकलने का कोई मार्ग शेष नहीं था। तभी पूरी शक्ति से अपना हाथ ऊपर कर हिलाते हुए रिहाना की ओर अन्तिम बार उसने पुकारा—"जयहिन्द।" रिहाना भी इस हृदय-विदारक दृश्य को देखकर अवाक् रह गई और अन्त में उसे भी राज के स्वर से स्वर मिलाते हुए जोर से पुकारना ही पड़ा—"जयहिन्द।" और रिहाना उन आग की लपटों को पत्थर की तरह सुन्न खड़ी देखती रही। उसके होंठ बुदबुदाते रहे·····रा·····ज ·· जय ···हिन्द !

गोपाल मकुन
एम. ए. बी. एड.,
राजकीय माध्यमिक विद्यालय, जेजूसर,
जिला झुन्झुनू (राज०)

15

पहाड़ी

दयावती शर्मा

सुनन्दा की शादी की आज दसवीं साल गिरह थी। एक नहीं दस बंसत आये और चले गये। उसके गुलाबी चेहरे पर उदासी की हल्की तह जम गई, उसका मन गहरी उदासीनता से भर गया। उसके चारों तरफ काट खाने वाला सूनापन व्याप्त हो गया। यह सब होते हुए भी उसे अपने पति के सामने अपनी उदासीनता पर खुशी का आवरण डालना होता।

उसके पति उसकी उदासीनता से अनभिज्ञ हों ऐसी बात नहीं थी। वे जानते थे– सुनन्दा की थकी मातृ-सुलभ भावनाएं करवटें ले रही हैं, पर इसमें उनका क्या वश। उनका भी तो पितृ-हृदय अनजानी तड़प से भरा था। पुरुष होने के नाते उनका प्रयत्न यही रहा कि सुनन्दा उनकी भावना को जान अपने को हेय न समझे।

सुनन्दा के पति दीनानाथ जी का बहुत बड़ा वर्कशाप था। सैंकड़ों मजदूर मिस्त्री उसमे काम करते थे। एक मिनिट की भी फुरसत न होने पर भी वे दोपहर की कुछ घड़ियां सुनन्दा के पास ही बिताते थे।

सर्दी की शान्त दोपहरी में आराम कुर्सी पर बैठी सुनन्दा धूप सेक रही थी तभी चिरपरिचित किवाड़ों की थपकी सुन सुनन्दा ने किवाड़ खोल दिये। किवाड़ खुलते ही एक तेरह चौदह साल के लड़के के साथ उसके पति अन्दर आए।

बैठ कर पूर्ण स्वस्थ होने पर दीनानाथ जी बोले-सुनती हो! आज मैं तुम्हारे लिये यह लड़का लाया हूँ। यह तुम्हारे काम में हाथ बटायेगा। अकेला

है बिचारा यहीं रख लेगें। इतना कह कर वह सुनन्दा के मुंह की चढ़ती उतरती भावभङ्गिमा देखने लगे। सुनन्दा का हृदय अपने पति की उदारता को देख भर आया। पर शीघ्र ही अपनी भावनाओं पर काबू लाकर उसने लड़के की तरफ देखा।

"क्या नाम है तुम्हारा" ?

'पहाड़ी'—

'नाम तो सुन्दर है।' कह कर उसने उस गौर-वर्ण चमकती आँखों वाले लड़के को बड़े ध्यान से देखो। कपड़ों पर जगह-जगह हल्दी, कोयला और कई प्रकार के चिकने, मटमैले धब्बे लगे देख सुनन्दा ने पूछा, कहीं, होटल पर काम करते थे ?

'हां'

यहां रहोगे ?

हां।

सुनन्दा की स्वीकृति दीनानाथ के लिये दैवी वरदान थी। उसे कोई नौकर नहीं जचता था। बूढ़ों पर दया और जवानों पर काम न होने पर क्रोध। तभी तो वे उस लड़के को लाए। उनके हृदय से एक बोझ उतर गया। थोड़ी देर इधर-उधर की बातें कर वे उठ कर चल दिये।

पहाड़ी आया और साथ ही लाया सुनन्दा की वर्षों की दबी कामना का साकार रूप। समय जाते देर न लगी। शादी की ग्यारहवीं साल गिरह सूनी-सूनी नहीं, वास्तविक उमंगों में डूब कर आई। और एक दिन सुनन्दा का विशाल भवन कर्ण-प्रिय बाल-किलकाहट से भर गया। खुशी में क्या-क्या लुटाया गया ? कितने दिन मजदूरों को छुट्टी रही, यह सब तो तब ज्ञात हुआ जब दीनानाथ जी की खुशी का उन्माद उतर गया।

इसके बाद तो एक नहीं तीन नन्हें मुन्नों की मां बन गई सुनन्दा और पहाड़ी उनका बड़ा भाई।

लान के झुरमुट में मखमली दूब पर कोने में छोटा पहाड़ी बैठा था। बच्चे दूर खेल रहे थे।

उस को सुनन्दा ने देखा आज हमेशा जैसा पहाड़ी नहीं था।

"तबीयत खराब है पहाड़ी"

नहीं,

तो फिर क्या बात है !

पहाड़ी रो देगा ऐसा सुनन्दा ने सोचा भी न था। उस बीस साल के पहाड़ी में भी वही चिथड़ो वाला पहाड़ी दिखता था उसे।

"क्यों रे क्या बात है ?" इतने वर्षों में लड़के ने मन की बात बताई थी। उसी रात सुनन्दा ने अपने पति को पहाड़ी को शीघ्र से शीघ्र मोटर-चालक का कार्य सिखा देने के लिये कह दिया था।

चार महीने के कठिन परिश्रम से ही पहाड़ी मोटर-चालक बन गया।

मैं जाऊं बीबी जी। कहते हुए पहाड़ी का गला भर आया और तब सुनन्दा ने खुशी का खजाना साथ लाने वाले उस लड़के को किस हृदय से विदा दी वह स्वयं भी न जान सकी।

पहाड़ी चला गया। उसे गये कई वर्ष बीत गये। बीच-बीच में उसके पत्र आते रहे। सुनन्दा ने कई बार उसे आने के लिये लिखा पर हर बार उसने अपनी बूढ़ी माँ का लिख, क्षमा माग ली। "आऊंगा जरूर" ऐसा हर पत्र में लिखा होता।

सुनन्दा शाम का खाना मेज पर लगा चुकी थी। बच्चे खाने को तैयार बैठे थे। "अच्छा होता आज बच्चों को खिला देते, मेरी तबीयत ठीक नहीं। घबराने वाली बात नहीं, बस यूं ही। चलो बच्चों को खिला दें।" उसने पति से कहा।

रात्रि के शान्त प्रहर मे बच्चे गहरी नींद में सो रहे थे। सुनन्दा के पति बार 2 करवट बदल रहे थे।

सुनन्दा पास आकर बोली "क्यों तबियत ज्यादा खराब है ?"

नहीं। तुम बैठो मेरे पास एक बात कहूँ। हां, रोओगी तो नहीं, "दीनानाथजी ने कहा। सुनन्दा के और पास होकर वह भर्राये गले से बोले-पहाड़ी मर गया।" सुनन्दा के मुंह से एक चीख निकल गयी। फटे चिथड़ों वाला पहाड़ी उसकी सिसकियों में खो गया।

16

सोया हुआ सुख

विनेश विजयवर्गीय

वे उठ गये। उन्होंने खटिया पर पड़े हुए अपनी आँखों को चारों ओर घुमाया। कमरे के भीतर उन्हें दिन होने का अहसास रोज की तरह लगने लगा। सूरज जरूर ऊपर उठ आया होगा। उन्हें लगा वे आज भी देर से उठे हैं। सोये भी तो बहुत रात के गये तक। रात भर से उनकी कमर में दर्द रह-रह कर हो रहा था। और वे 'हाय राम' करके रोते रहे थे। रोते हुए ही उन्हें कब नींद लग गई, इसका उन्हें मालूम नहीं।

अब उन्हें उठ जाना चाहिये सोचकर उन्होंने अपने ऊपर से गुड़मुड़ सी हुई रजाई को धीरे-धीरे खिसका दिया। फिर एक बार अपनी निर्जीव सी आँखों से कमरे को देखा और फेफड़ों में ढेर सी हवा भरी। अपने दोनों हाथों को खटिया पर टेक अपने पास की खिड़की को खोलने उठे तो एका-एक कमर के सोये हुए दर्द ने बुरी तरह से टीसा और वहीं 'हाय राम' कहकर झुक गये। और तब उन्हें काफी देर तक लम्बी सांसें लेनी पड़ी थीं।

वे अब मर ही जायेंगे—और मर ही जाना चाहिये। रखा भी क्या है? इस जिन्दगी से तो नरक ही भला। क्या रखा है इस पचहत्तर साल की उम्र में जीने में? वे मन ही मन कुछ सोचते रहे।

उन्हें बीड़ी पीने की तलब हुई, तो बिना करवट लिये ही उन्होंने अपने तकिये के नीचे से रात से छिपा हुआ अधजला बीड़ी का टुकड़ा निकाल कर सुलगा लिया। और फिर होंठे-होंठे कश खींचने लगे।

बीड़ी खत्म होने के बाद उन्हें मुंह में कसाव और कड़वा कसैलापन महसूस होने लगा। अक्सर कई बार उन्हें ऐसा ही होता है। और फिर इस धुंए का को पानी से कम करना पड़ता है। अभी भी उन्हें पानी की आवश्यकता है।

[illegible]

लेटे हुए ही पास रखी हुई सुराही से पानी लेने उठने को हुए तो उन्हें ख्याल आया कि सुराही तो रात से ही खाली है। वे रात को कहते हुए सो गये थे।

बगल के कमरे से चाय के कप प्लेटो की खनक सुनाई दे रही थी। सब के सब चाय पीने में तल्लीन हैं। उन्होंने भी चाय पा लेने की इच्छा से अपनी जीभ को होंठों तक बाहर निकाल कर घुमाया।.

काफी समय तक चाय-पानी की इच्छा के लिये वे अपने को बहलाये रहे। उनकी इच्छा हुई कि वे अपने बेटे-बहू से जाकर कहें कि कम से कम पानी तो पिला दिया करें। इसके लिए उन्होंने उठकर ही कुछ कहना मुनासिब समझा। वे उठने को हुए तो अन्दर से कप-प्लेट के फूटने की आवाज ने उन्हे चौंका दिया। शायद किसी बच्चे के हाथ से छिटक कर टूट गई थी। और तभी बेटे व बहू दोनों ने एक साथ पूछा था—'बेटे, कही लगी तो नही ? कहते हुए बहू ने दूसरे कप-प्लेट में चाय थमादी थी।

उन्हे परसों की घटना याद हो गई। वे भी जब सुबह बिस्तर छोड़कर कप-प्लेट से चाय पीने लगे थे, तो उनके हाथ बुरी तरह कांप रहे थे। और उसी समय उनके हाथो पर गर्म चाय गिर पडी थी। जिससे कप-प्लेट हाथों से छिटक कर कई टुकड़ों मे बिखर गई थी। टूटने की आवाज बहू के कान में पड़ी तो वह रसोई घर से दौड़ी हुईपास के कमरे मे आकर कहने लगी थी—

—'लो मरे इस खूसट ने बैठे बिठाये कप-प्लेट भी तोड दिये। बूढे का शौक तो देखो—मरा पीतल के गिलास से तो चाय नही पीना। एक बार दी तो कहने लगा—मई इससे तो नही पी सकते। कोई पूछे, पी क्यो नही सकते ? कप प्लेट में ही मायेगी चाय। और देखो मरा बैठे बिठाये एक बण्डल पूरा बीड़ो का सुक-सुक करके पीजाएगा। तभी पास में खडे बच्चों को हँसी आने लगी थी। वे स्वयं भी बहुत देर तक मुट्ठिया भींचकर सुबकने लगे थे। उस समय फिर उनका जी हुआ था कि उन्हें मर ही जाना चाहिए।

उन्होने एक बार फिर से पास में पड़ी हुई बैंत के सहारे उठने की कोशिश की तो वे उठ गये। उठकर पास वाली खिड़की को खोला। कमरा एकाएक तेज किरणों के प्रकाश से लबालब भर गया। इससे उन्हें कुछ राहत मिली और धूप में बैठ बदन को धीमी-धीमी सुबह की धूप सेकते रहे।

खिड़की के सींखचों में अपना मुंह फिट किया और सामने की सड़क को देखने लगे। इस सड़क से न जाने क्यों अपनापन उनमें लिपटा हुआ है वे हमेशा इसी सड़क से तो आते जाते रहे हैं। और इसी सड़क से अपनी पत्नी की लाश को कंधें से झुलाते हुए ले गए थे। उस समय उनका सारा वजन इसी बेंत के सहारे टिका हुआ था। बेंत के अन्दर छुपी हुई छुरे-नुमा लंबी सलाक ने कई बार उनकी रक्षा की थी।

उन्होंने एक दो बार गले की लिचलिची खराश को हटाने के लिये खंखारा। फिर अपना ध्यान बगल वाले कमरे में लगा बैठे। न चाय, न पानी। हाय राम! ये क्या होता जा रहा है…………? वे मन ही मन अपने से पूछ रहे हैं। उन्होंने फिर अपने पुत्र-सोमू को आवाज लगानी चाही। पर न जाने क्यों चुप रहें।

सोमू को उन्होने बड़ी मुश्किल से पाला है। पैंतीस साल की उम्र में वह कई बार बीमार पड़ा था। एक बार तो इतना बीमार हुआ था कि मुश्किल से बच पाया था। इसकी माँ तब कई दिनों तक रात-रात भर जगी थी। और 'परवतिया वालाजी' के नाम की ब्राह्मणों को भोजन कराने की मिन्नतें करी थीं। हमेशा रट लगाती रही थी 'हाय परवतिया, बचालियो मेरे सोमू को। विपत्ति दूर रखियो।' परवतिया ने उसकी सुनी और सोमू को ठीक कर दिया। सोमू जरा बड़ा हुआ कि कहने लगती—'देखो बेटा सयाना हो रहा है। जल्द ही करूंगी मेरे सोमू के पीले हाथ।'

लेकिन अब तो सब कुछ हो गया। हाथ भी पीले हो गये। अच्छी सी नौकरी हो गई, और परवतिया की कृपा से बच्चे भी हो गये। पर ये बहू कैसी आई है, भगवान? पूरी जादूगरनी है। सोमू पर जाने क्या जादू कर दिया कि बात ही करना पसंद नहीं करता। कभी उनके कमरे में आता है तो—तबियत कैसी है, या खाना खाया या नहीं पूछने की जगह कोई सनीमा का गाना गाता हुआ कमरे में चारों ओर देखता है और फिर चला जाता है।

वे रूँआसे हुए। इसी दिन के लिये पाला था सोमू को। आज वो जिन्दा होती तो देखती इस घर में उसकी कैसी हालत हो रही है। वे मन ही मन सोचते रहे तभी एक दम उठने वाले दर्द से वे कराह उठे और वहीं लुढ़क कर

प्रतिदीप—1

गठरी हो गये। उनका गला प्यास से बिल्कुल सूख गया था। थूँक निगलने में उन्हें अजीब-सा दर्द महसूस हुआ। कमर दोनों हाथों से सहलाते हुए, उन्हें रोना आगया।

उन्होने रोते हुए गले से बोलने का प्रयास किया। पर बोल नहीं पाये। लगा जैसे अन्दर से कोई मना कर रहा हो। उन्होंने नई अपमानित स्थिति से बचने के लिए मर जाना चाहा। इसके लिए चारो ओर कमरे मे घूमा, पर कोई विशेष चीज नजर नहीं आई। थकी हुई आखों ने एक बार फिर बेंत को देखा। बेंत का ध्यान आते ही पत्नी की झूमती हुई लाश नजर आने लगी। इसी बेंत के सहारे वे उसे स्वर्ग में पहुंचा के आये थे। उन्हे लगा कि इसी बेंत में छुपे हुए खन्जर से अपने आपको खत्म करलें।

●

दिनेश विजयवर्गीय
बालचंदपाड़ा, बून्दी (राज०)

17

पीली धूप

जगदीश 'सुदामा'

सवेरे से शाम तक कितनी ऋतुएं बदल गई हैं। एक ही दिन में समूचे अतीत को जी लेने का एहसास हुआ है।

जीभ पर चढ़े हुए कितने ही स्वाद-कड़वे, मीठे, कसैले....। शाम की खिड़की से कमरे में झांकती हुई यह पीली धूप, अब शायद मुझे न पहचानती हो। मेरा इससे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है।

दिन के तीसरे पहर, बचपन की अतृप्त भूख, ठंडी रोटी के लिए मां को परेशान कर देती। मां, रोटियों का डिब्बा खोलकर हमारे सामने रख देती। हमारे पास ही पड़े होते नमक मिर्च के दो डिब्बे।

कमली, तुझे एक ही रोटी मिलेगी। तू सबसे छोटी है ना, इसलिए। मंझले भाई साहब यह कहकर उसको एक रोटी देते और ऊपर से थोड़ा नमक मिर्च। कमली रोते चिल्लाते मां के पास जाती और तब मां आकर बराबर बंटवारा करती।

कई बार तो भाई साहब और जीजी के प्रस्ताव पर, पिताजी द्वारा मां को पकौड़ी बनाने का आदेश दिया जाता। तब हमें जीजी और भाई साहब के आदेशों का अक्षरशः पालन करना होता। मंझले भाई साहब हरी मिर्च, धनिया, लौकी आदि के लिए सब्जी बाजार दौड़े जाते। मैं डिब्बा लिए हुए किराने की दुकान तक भागा जाता, और कमली को चौके में आकर झिड़कियां खानी होती थीं।

सर्दी में अक्सर डिब्बे में रोटियां न होने पर हम सबके लिए मक्का के फूले बनाये जाते। मां, उनको थोड़ा मीठे तेल में तल लेती, और फिर थोड़ा नमक-मिर्च लगाकर हमें खाने को देती। हम चाव से मां और पिताजी भी

प्रतिनिधि—7

महसूस नहीं रह पाते। यही कमरा और यही शाम की पीली धूप होती थी तब।

पिताजी की पेंशन के बाद भी इस धूप मे कोई विशेष अन्तर नहीं आने पाया था। परिवर्तन हुआ था तो सिर्फ इतना कि इस भरे-पूरे परिवार का भार वहन करने के लिए, मंझले भाई साहब को पढ़ाई बीच मे ही छोड कर नौकरी कर लेनी पड़ी थी। हम दोनों भाई बहनों को पढाने का बीड़ा उन्होने ही उठाया था। अब वे भी इस घर के जिम्मेदार व्यक्तियों मे से एक थे। हर विशेष आयोजन पर अब उनसे भी राय ली जाती थी। कुछ दिन तो यह परिवर्तन आकस्मिक-सा लगा। धीरे-धीरे वह भी सहज होता गया।

तीसरे पहर की ठंडी रोटी में अब तीन की जगह दो का सीर होता। एक मैं दूसरी कमली।

जीभ का स्वाद बदल गया है, या नमक-मिर्च में ही अब वो स्वाद नही। कुछ भी तो नहीं कहा जा सकता। भीतर ही भीतर, एक-एक कर हम लोग टूटते-बिखरते गये, और हमें खबर तक नहीं हुई।

एक-एक कर हम पाँचों भाई-बहिनों की शादियां हुईं। हर आकस्मिक परिवर्तन धीरे-धीरे सहज होता गया। पीली धूप मे अगर कहीं थोड़ा सा अन्तर आया था, तो वह था कमली के पीले हाथ। जिस दिन बाजे-गाजे के साथ कमली को विदा किया गया था उस दिन जैसे उस समारोह का मैं ही एक द्रष्टा रह गया था। एक बड़ी परात से ढकी हुई हवन-वेदी। पत्ता-पत्ता मंडप का मुरझाया हुआ। एक ही समय मे गाने और रोने की मजबूरी। शायद यही कारण रहा हो, मेरे रोने का भी।

विवाह का मेला कुछ ही दिनों में बिसर गया। धीरे-धीरे फिर सब कुछ जैसे सहज होने लगा था। ठंडी रोटी पर चिमटी-भर नमक-मिर्च रखकर अभी पहला कोर ही तो उठाया था। शाम की पीली धूप, फूट-फूट कर रो पड़ी। हाथ से रोटी का ग्रास छूट पड़ा। उस दिन के बाद फिर कई दिनों तक तीसरे पहर की वह भूख महसूस नहीं हुई।

आज मैं जिस पियराई धूप की शाम को जी रहा हूँ, वह शाम मेरी भोगी हुई है। तीज-त्योहार पर लिपे-पुते आँगन। मौसम के साथ-साथ पिताजी की पगड़ी और माँ की साड़ी के बदलते हुए रंग—लहरिया, गुलाबी, बसन्ती……। एक-एक चित्र आँखों के आगे उभरता जा रहा है। किरणों के अणु-अणु मे बीते हुए पल जीवित हो उठे हैं। मैं उन्हें स्तब्ध-सा देख रहा हूँ, अपलक।

जाने कहाँ से एक पैनी किरण मेरी आँखों पर आ पड़ी है। मैं उसी से त्राण पाने के लिए थोड़ी करवट ले लेता हूँ।

किसे खबर थी कि एक दिन यह धूप भी इतनी निस्तेज और ठण्डी हो जायगी। दीवारें स्तब्ध हो कर पूछतीं—क्या हुआ ? और हर बार एक मौन उत्तर मिलता। पेरेलाइसिस का तीसरा और अन्तिम दौर पड़ा था – बस।

उसके बाद पूरे एक वर्ष तक हम और हमारे निकटतम सम्बन्धी इस आकस्मिक को भी सहज बनाने का प्रयत्न करते रहे। लेकिन हममें से हर-एक की जबान पर अब एक ही तो नाम चढ़ गया था—पिताजी·······!

आज एक लम्बे अर्से के बाद जब अपनी चिर-परिचित पीली धूप को आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहा हूँ, तो जाने क्यों ऐसा एहसास होता है कि अब शायद धूप हममें से किसी को नहीं पहचानती।

मैं पहचानता हूँ। बड़े भाई साहब के व्यवहार मे कुछ और गुरुता आ गई है। और यह स्वाभाविक भी है। मझले भाई साहब, उनके व्यवहार को किस दृष्टि से देख पाते होंगे—मैं नही जानता। इतना जानता हूँ कि जब कभी बड़े भाई साहब आदेश के स्वर बोलते हैं, तब एक अजीब-सी गुदगुदी होने लगती है। मुझे अच्छी तरह याद है वो दिन, जब भाई साहब ने अपने सीने में पिघलते हुए लावा को दबाते हुए कहा था—रो मत बेटे। बाप तो मेरा मरा है। इधर देख, आज मैं अनाथ हो गया हूं। दुख का पहाड़ तो मुझ पर टूट पड़ा है। अरे पगले, रोना तो मुझे चाहिये ···· ··। चुप हो जा। अभी तो हमें हिम्मत से काम लेना होगा। बहुत ही श्रद्धापूर्वक हमें उनकी उत्तर-क्रिया संपूर्ण करनी होगी ताकि उनकी आत्मा को शान्ति मिल सके। और इतना कहने के बाद, वे स्वयं भी मूर्छित हो गये थे।

अब यह धूप, शायद चली जाना चाहती है, तो चली जाय। मैं इसको नहीं रोकूंगा। लेकिन आज एक बात इसे स्पष्ट कह देना चाहूँगा—तू जिन लोगों के लिए यहाँ हर शाम चली आती है वे लोग अब यहाँ नहीं रहते। अब यहाँ कोई तीन परिवार बसते हैं, जिन्हें तू नहीं पहचानती। जा·······चली जा। और हाँ, कल फिर इसी समय तू चली आना। मैं तेरी प्रतीक्षा करूंगा"।

जगदीश 'सुदामा'
श्री कृष्ण निकुंज
मटियानी चौहटा
उदयपुर, राजस्थान

17

अभी कुछ रात बाकी है

ओम केवलिया

लगता है जैसे रात ठहर गई हो। आसमान में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं दे रहा। सितारे उसी जगह हैं, चन्द्रमा वहीं का वहीं रुका हुआ है। एक अजीब-सा सन्नाटा है। वैसे तो रात गए कभी-कभी कुत्तों के भौंकने की आवाज तो आ ही जाया करती थी। आज सभी खामोश हैं। पड़ौस में भी किसी के खाँसने की आवाज भी नहीं सुनाई देती और न ही किसी बच्चे के रोने की आवाज आ रही है जैसे उनको ग्राइप-वाटर देकर सुला दिया गया हो। लगता है सभी को साँप सूंघ गया है। शायद मुझे ही कुछ हो गया है। दिमाग कितना भारी हो रहा है। परछाइयाँ और गहरी हो गई हैं। मैं तो आज सब मामला साफ करके आया हूँ। सीमा से कह ही दिया कि मैं और अधिक परेशानियाँ नहीं लेना चाहता। फिर भी अभी तक इतनी परेशानी क्यों है? सोचा था आज के बाद नए सिरे से जीवन-क्रम शुरू करूंगा। रह रह कर उसका विचार मेरे मस्तिष्क पर काबू पा लेता है। मैंने स्पष्ट कह दिया कि तुमने जो रास्ता चुना है उसी पर सावधानी से आगे बढ़ो। यह तुम्हारा *व्यक्तिगत मामला है। मैं तुम्हें प्रसन्न देखना चाहता था और अब भी चाहता हूँ।* जिसमें तुम्हें सुख मिले वही काम करो। मुझे दुःख इस बात का है कि तुमने मुझे समझने में गलती की है। मैं अब एक दीवार नहीं बना रहना चाहता।

कितनी असत्य बात सीमा ने कही थी कि मैं उसे बदनाम कर रहा हूँ जब ऐसा मैंने तो स्वप्न में भी नहीं सोचा था। उसने ऐसा कह क्यों दिया? आखिर कैसी बदनामी! कोई स्पष्टीकरण भी तो वह नहीं दे सकी।

सिंहावलोकन करता हूँ तो कई चित्र उभरते हैं जो स्पष्ट हैं, बेदाग हैं और गंगा-यमुना की तरह पवित्र हैं। मैंने इन चित्रों में रंग भरा है। नया

जीवन देने का प्रयास किया है। उन्हें अपवित्र या बिगाड़ने का सोचा ही नहीं। तो फिर यह इल्जाम अपने सिर पर कैसे ले लूं कि मैं उसे बदनाम कर रहा हूँ। जीवन के कई रंगों में यह भी एक रंग है। इस तथ्य को अब अस्वीकार कैसे कर दूँ?

कल सुबह तो मुझे यह शहर छोड़कर जाना है उसकी खुशी के लिये इस शहर में यह आखिरी रात है और अभी कुछ रात बाकी है।

मुझे याद आ रहा है जब उससे पहली मुलाकात हुई थी। उसे हमारे ऑफिस में आए हुए चन्द रोज ही हुए थे। देखने में बुरी नहीं लगती थी। शरीर सुडौल था। आँखों में एक विचित्र चमक थी। ऐसा प्रतीत होता था मानो वह किसी खोई हुई वस्तु को तलाश कर रही हो। वह मेरे ही सैक्शन में नियुक्त की गई थी। सैक्शन ऑफिसर होने के नाते मेरा अलग कमरा था। पहली बार वह एक जरूरी फाइल के बारे में पूछने मेरे पास आई थी। उस समय मैं सब काम समाप्त करके अपनी नई कहानी की नायिका को आत्म-हत्या करने से बचाने का प्रयास कर रहा था।

सर! बजट की जो फाइल आपके पास है, उसकी हमें आवश्यकता है।

अभी मैंने चपरासी के साथ मेहताजी के पास भिजवा दी है।

वह चली गई। मुझे ऐसा लगा मानों मैं अपनी कहानी की नायिका को आत्म-हत्या करने से नहीं बचा सका। दूसरे दिन मुझे अपने मित्र अजय से मालूम हुआ कि सीमा उसके मामा की इकलौती बेटी है। अपने पति के अत्याचारों से तंग आकर अपने पिता के पास रह रही है और समय काटने के लिए नौकरी कर ली है। एक दिन अजय ने आकर हमारी मुलाकात भी करा दी।

कुछ दिनों के पश्चात्……………

मैं ऑफिस से निकल कर पटरी पर खड़ा टैक्सी की प्रतीक्षा कर रहा था। इतने में सीमा को भी आते देखा। वह शायद बस स्टैंड की तरफ आ रही थी। टैक्सी आ गई तो मैंने औपचारिकता के नाते उसके साथ चलने के लिये कह दिया तो वह मेरे साथ ही बैठ गई। रास्ते में कुछ इधर उधर की बातें हुईं। इतना उसने अवश्य कहा—"अजय भैया आपकी बहुत तारीफ करते हैं। मुझे अब ऐसा लगता है मेरा यहाँ मन लग जाएगा। वैसे मैं बहुत परेशान रहती हूँ। "मैंने भी उसे कह दिया" तुम्हें कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये।

जीवन में सुख-दुःख की परछाइयाँ मनुष्य पर पड़ती रहती हैं। मुसीबतों का डट कर मुकाबला करना हमारा कर्तव्य है।"

उसके घर का रास्ता करीब आ गया था। मैंने टैक्सी रुकवा दी। वह "नमस्ते" कह कर चली गई। मैं अपनी मंजिल की ओर बढ़ गया। दूसरे दिन वह एक फाइल लेकर आई। मैं उठने की तैयारी कर रहा था। वह मेरे सामने रखी हुई कुर्सी पर बैठ गई।

कल की बातों से मुझे बड़ी सांत्वना मिली है। मुझे ऐसा महसूस होता है कि मैं बेसहारा नहीं हूं। काश .... ।"वह बिना वाक्य पूरा किए उठ कर चली गई। अगले दिनों तक कोई विशेष बात नहीं हुई। अपने कमरे में जाने से पहले मैं उसे एक नजर देखता हुआ चला जाता था। अकस्मात् एक आवश्यक कार्य के सिलसिले में बाहर जाना पड़ रहा था। मैंने चपरासी के हाथ छुट्टी का प्रार्थना-पत्र सीमा के पास टाइप कराने के लिये भेजा। पाँच रोज की छुट्टी के लिए लिखा था। वह पत्र स्वयं ही टाइप करके ले आई।

आप तो बहुत दिनों के लिए बाहर जा रहे हैं।

नहीं सिर्फ पांच ही रोज। कहिए कोई विशेष बात है?

नहीं, यूं ही कह दिया। बात यह है आपसे जान-पहचान होने के बाद न जाने आपकी अनुपस्थिति से मुझे घबराहट होने लगी है। आपकी उपस्थिति मेरा अस्तित्व बन गई है।

सीमा, मैं चाहता हूँ कि तुम मुझे अपनी बात कहो। मैं प्रयास करूंगा कि तुम्हारा जीवन फिर से ठीक हो जाए और तुम सुखी जीवन व्यतीत कर सको। लौटने पर हम फिर मिलेंगे।

जाने से पहले एक बार फिर मैं ऑफिस चला गया। बस स्टैंड करीब ही था। सीमा ने मुझे देखा तो मेरे पास ही चली आई।

मैं सिर्फ तुम्हें मिलने ही आया था। अभी बस के जाने में एक घंटा बाकी है। तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करना। मैं शीघ्र ही लौटने का प्रयास करूंगा।

सीमा की आँखें भर आई थी। काम समाप्त करके चौथे ही रोज मैं लौट आया। वह बहुत प्रसन्न हुई फिर भी उसने शिकायती अन्दाज में कहा— आपने बहुत दिन लगा दिए। न जाने "मैं" क्या-क्या सोचती रही। कल इतवार है। मैं सोचती हूँ कि कुछ समय आपसे अपने जीवन के बारे में बातचीत करूं।

मेरे मन पर बहुत बोझ है। कल आप पुराने किले के बाहर तीन बजे
मैं वहाँ आपको मिल जाऊँगी।

दूसरे दिन मैंने उसे नियत समय पर प्रतीक्षा करते पाया। कि
भीतर पहुंचकर हम पुराने महलों को देखने लगे। एक खंडहर के पास
वह बैठ गई।

अच्छा, यह बताओ सीमा, तुम्हारे जीवन में अनबन का मुख्य क
क्या रहा है।

कोई एक कारण हो तो बताऊं। ये पत्र हैं जो उन्होंने मुझे यहां से
जाने के पश्चात् लिखे हैं। मैंने बहुत प्रयास किया कि वे मुझे क्षमा क
मैं कहाँ तक सहन करती। आप कोई रास्ता निकालें। मेरा
अंधकारमय हो चुका है।

मैंने एक एक कर के चार पत्र पढ़ डाले। मस्तिष्क में एक तूफान सा
गया। सोचने लगा कि क्या उत्तर दूं। समस्याएं बहुत विचित्र और
थीं। शीघ्रता से उनका हल ढूंढ़ना सहज कार्य नहीं था। मैंने पत्र लौ
हुए कहा—मैं तुम्हें सोचकर उत्तर दूंगा। कल एक पत्र लिख कर दूं
तुम उसे नकल करके अपने पति को भेज दो। उसका उत्तर आने पर
कुछ करेंगे।

आप यदि मुझे उनसे मिलवा देंगे तो मैं आपका अहसान जन्म भर
भूलूंगी। आपका मुझ पर उतना ही अधिकार होगा जितना उन
आप मेरी मंजिल हैं मेरे…… … अन्तिम वाक्य सुने बिना ही उठ
हुआ। अंधेरा होने चला था। सीमा के चेहरे पर मिश्रित भाव थे।
कदम कुछ लड़खड़ाने लगे। न जाने कब उसने अपना हाथ मेरे हाथ
थाम लिया। हम दोनों चल रहे थे। खंडहर की मोड़ आने पर
रुक गई। मैंने उसकी ओर देखा "……"

उस रात मैं अच्छी तरह न सो सका। सीमा के लिए एक पत्र तैय
किया। दूसरे दिन वह मेरे कमरे में कुछ पत्रों पर हस्ताक्षर करवाने के
आई। मैंने वह पत्र उसे दे दिया। कोई विशेष बात नहीं हुई। मैं अन्तिम
कार्य में बहुत व्यस्त रहा। फिर भी सीमा मेरे कमरे में दिन में एक दो
आ ही जाती थी। मुझे फाइलों में उलझा हुआ देखकर चली जाती थी।
दिन वह एक छोटा सा पत्र मेरे सामने रख कर चली गई। आग
अतिरिक्त उसने फिर मिलने की इच्छा व्यक्त की थी। उस दिन अन्तिम

परीक्षा—

निकलने पर वह मेरे पीछे पीछे चली आई। हम दोनों टैक्सी में बैठ गए। रास्ते में मेरे एक मित्र विनोद का मोटर रिपेयरिंग का कारखाना था। टैक्सी छोड़कर मैं विनोद के कारखाने से कार निकाल लाया। सीमा पिछली सीट पर बैठ गई।

कहा चलें ? मैंने पूछा।

जहा आप की इच्छा हो और कोई न हो।

शहर से बीस मील दूर एक गाँव की ओर कार का रुख किया। आबादी से बाहर निकले पर वह मेरे पास ही आकर बैठ गई।

सीमा, कुछ कहो न ! आज तुम कुछ अधिक परेशान दिखाई दे रही हो।

आप मेरे दिल की हालत को क्या समझेंगे। आप पुरुष हैं न ! हर समय आपका चेहरा आँखों के सामने रहता है। मैं कोई पत्थर तो नही हूँ आखिर इन्सान हूं। इधर कुछ दिनों से आप इतने व्यस्त रहते हैं कि दो घड़ी बात भी नहीं कर पाते।

एक छोटी पहाड़ी की तलहटी के पास ही कार रोक कर हम दोनो उतर गए। एक निर्जन स्थान पर चल कर मैं बैठ गया। वह भी मेरे समीप बैठ गई।

आपने मेरी किसी भी बात का उत्तर नही दिया। आप अभी से इतने परेशान हो गए। आप तो मुझे प्रसन्न देखना चाहते हैं फिर आपको क्या हो गया है।

मैं सचमुच तुम्हे खुश देखना चाहता हूँ। लेकिन क्या करूं कुछ समझ मे नही आता।

आप पुरुष होकर भी नहीं समझ पा रहे !

कुछ दिनों के पश्चात् मेरा तबादला दूसरे सैक्शन में होगया जहा कुछ काम अधिक था। सीमा के मुंह से मैं यह सुनकर अवाक् रह गया कि मैंने जानबूझ कर अपना तबादला करवाया है। यह बात कहते समय उसके चेहरे के भावों में एक अजीब परिवर्तन आ गया था। यह बात असत्य थी। उस दिन के पश्चात् सीमा ने मेरे हृदय में एक विशेष स्थान बना लिया था। मैं उसे बहुत चाहने लगा था। दूसरे सैक्शन मे जाने के पश्चात् मैंने उसे दो तीन

बार बुलवाया लेकिन पहले जैसी सीमा अब नहीं रही थी। उस दिन संयो
विनोद मेरे पास ही बैठा था जब वह मेरे पास कमरे में आई। उसे दे
वह कुछ क्षणों के लिये बाहर चला गया। सीमा के जाने के पश्चात
लौट आया।

तुम इस लड़की का जिक्र कर रहे थे। विनोद ने पूछा।

हां, बहुत अच्छी है सीमा। शी इज वेरी स्वीट।

बेवकूफ मत बनो। यह बहुत बदनाम लड़की है। तुम इसे जानते
क्या? तुम तो बड़े समझदार बने फिरते हो। भावुक हो न, इस
उसके दुख दर्द को अपने सीने से लगा लिया होगा। यह कहानी
यहीं समाप्त करदो और किसी अच्छी तथा नई कहानी की तलाश क
मैं नहीं चाहता कि तुम अपने आपको इसके पीछे बरबाद करो।
जाओ इसे……।

विनोद, कह नहीं सकता कि इसे भूल भी पाऊँगा या नहीं मुझे
मुश्किल ही लग रहा है।

इसके बाद सीमा से कई बार मिलने का प्रयास किया परन्तु वह मेरे
मुँह फेर कर निकल जाती। कई बार तो यह विचार भी आता कि
विनोद ने ही उसे कुछ कह दिया होगा। विनोद से पूछने की हिम्मत
हुई। जब मैंने उसे स्वयं नए सेक्शन आफिसर के साथ दो बार बार मे
देख लिया तो बहुत आघात पहुंचा। बीते हुए दिन आँखों के सामने
लगे। इतने शीघ्र यह सब कैसे हो गया। कुछ भी समझ में नहीं आया

एक-एक करके कई सितारे गायब हो चुके हैं। चन्द्रमा की स्थि
भी परिवर्तन आ गया है। वातावरण में पहले-सा सन्नाटा नहीं रहा,
धूमिल होता जा रहा है। सीमा के कहे हुए शब्द बार-बार कानों से टकरा
हैं। न जाने क्यों ये आवाजें मेरे अन्दर एक घुटन-सी भर रही हैं। मैं
अलग कर देना चाहता हूँ पर एक अजान मोह है जो ऐसा करने से रोक
है मुझे। क्या सीमा भी ऐसा महसूस करती होगी! फैज साहब की प
याद आ रही हैं—

और भी दुख है जमाने में मुहब्बत के सिवा

प्रतिध्वनि-

राहतें और भी हैं, वस्ल की राहत के सिवा।

आज सोच रहा हूँ कि प्यार होता भी है या नहीं और होता है तो कैसा होता है। जो मैंने किया है वह प्यार था या कुछ और? हो सकता है यह सीमा का अभिनय ही रहा हो। किसी ने ठीक ही कहा है कि स्त्री हमेशा अपने अभिनय में सावधान रहती है लेकिन पुरुष कभी कभी भूल भी जाता है।

अब तो बहुत रात गुजर गई है फिर भी अभी कुछ रात बाकी है। ●

19

श्राप

•

मोहन परदेसी

एक सुन्दर-सी लता भूमि पर फैलकर इठलाती तथा झूमती हुई वायु के झकोरों से अठखेलियाँ कर रही थी। लता के मदमाते-यौवन तथा सौन्दर्य पर रीझ कर समीप के एक वृक्ष ने वायु के हाथों यह सन्देह भेजा – प्रिये, तुम तो महान हो। तुम्हारा स्थान नीचे भूमि पर नहीं, अपितु मेरे हृदय में है। आओ, मैं तुम्हारा सम्मान करता हूँ।

वृक्ष की वाणी में मधुरता तथा अपनापन देख, लता उसकी ओर बढ़ गई। वृक्ष भी अपनी विशाल भुजाओं द्वारा लता का आलिंगन करने लगा तथा लता भी उसके वक्ष:स्थल से लिपट गई और दोनो भावी जीवन की कल्पना में लीन हो गये।

जलधारा के प्रवाह की भाँति समय व्यतीत होता गया और एक दिन ऐसा आया कि वृक्ष का सौन्दर्य चन्द्रमा की कलाओं की तरह क्षीण होता गया। यहाँ तक कि उसके समस्त पात झड़ गये। सौन्दर्य तथा यौवन जाता रहा। सारा शरीर शिथिल हो, काला पड़, मृतक के समान हो गया। अपने स्वामी की यह स्थिति देख, साथ ही प्रेम में प्राणों की आहुति देते हुए समझ लता के हृदय में विचार आया, मेरे कारण ही मेरे देवता का यह हाल हुआ है। अतः क्यों न मैं ही इनसे पूर्व इन्हीं के चरणों में अपने जीवन क सहर्ष बलिदान कर दूँ।

लता ने यही किया। अपने प्रियतम के चरणों में अपने प्राण त्य कर स्वयं को महान सिद्ध कर दिया, किन्तु प्रेम में अतृप्त लता की आ भटकती रही।

प्रतिध्वनि-

ऋतुराज वसन्त आया। वृक्ष में कोंपलें आ गईं और उसे नया जीवन मिला। अपने प्रिय को पुनः नव-जीवन से परिपूरित देख, लता की भटकी हुई आत्मा को कुछ शान्ति मिली, किन्तु ज्योंही उसकी दृष्टि अपने आराध्य के वक्षःस्थल से लिपटी हुई दूसरी लता पर पड़ी तो उसका हृदय जल उठा और उसके मन में एकाएक सौत के भाव उत्पन्न हो गये।

उसने वृक्ष से कहा, नाथ ! तुम्हीं ने तो उस दिन कहा था कि मैं तुम्हारे विरह में तनिक भी जीवित नहीं रह सकूँगा, मैं तुम्हें हृदय से प्रेम करता हूँ। केवल तुम्हें ! आदि। पर मैं ही तुम्हारे भुलावे में आई जो तुम्हारी अर्चना में मैंने थाल सजाये, तुम्हारी आरती की और सदैव तुम्हारी आराधना में लीन रही, परन्तु उस समय मैं यह नहीं जान पायी थी कि तुम्हारे नेत्रों में प्रेम-ज्योति नहीं बल्कि कुछ और है। तुम्हारी मधुर-मुस्कान में अमृत नहीं, अपितु विष था। उस समय मैं तुम्हारी भोली-भाली बातों के जाल में फँस गई, यहाँ तक कि अपने समस्त परिवार को ठुकरा, तुम्हारे प्रेम में पागल हो, मीरां की भाँति तुम्हारी आराधना की और तुम्हें इष्ट मानकर जीवन की समस्त कठिनाइयों को मुस्कराकर झेला, और तुम निकले निष्ठुर, ढोंगी और विश्वास-घाती। दगाबाज, तुमने मेरे भोलेपन का अनुचित लाभ उठा, मुझे कहीं का न रखा।

वृक्ष मौन रह, यह सब सुनता रहा। अन्त में हताश हो, उसने दूसरी लता को भी सावधान करते हुए फिर कहा, देख आज जो मेरी दशा है कल तेरी भी यही होगी। अच्छा है, इससे पहले ही तू भी सचेत हो जा, नहीं तो बाद में तुझे भी पछताना पड़ेगा।

लेकिन वह भी एक व्यंग-भरी मुस्कान लेकर रह गई। तनिक समय मौन रह, लता की भटकी हुई आत्मा पुनः ज़ोर से चीत्कार कर उठी। उसके शब्द वायु-मण्डल में प्रतिध्वनि करने लगे।

तुम भी पुरुषों की भाँति हो। तुम्हारे जैसों ने न जाने कितनी ही भोली-भाली सुकुमार-लताओं के साथ विश्वास-घात किया होगा और न जाने मुझ जैसी कितनों के जीवन तुम्हारी रूप-ज्वाला में झुलस कर स्वाहा हो चुके होंगे। इसमें तुम्हारा दोष ही क्या ? पुरुष भी नारी के साथ इसी प्रकार का

व्यवहार करता होगा। लेकिन याद रखना मुझे तो शांति मिलेगी ही नहीं, परन्तु तुम्हें भी शीघ्र ही अपने कर्म का फल भोगना पड़ेगा और एक दिन पश्चात्ताप की अग्नि में जलना पड़ेगा। अपने पापों का प्रायश्चित करना पड़ेगा।

यह कह लता की आत्मा वायु-मण्डल में विलीन हो गई। कुछ दिनो पश्चात् लोगों ने देखा कि वास्तव में उस वृक्ष का सारा शरीर सूखकर काला पड़ा था और दो मजदूर अपने तीखे कुल्हाड़ों से उस पर प्रहार कर रहे थे और उस वृक्ष के मुख से निकल रही थी एक करुणा-भरी पुकार.......... वेदना-पूर्ण चीत्कार।

कदाचित् यह लता का ही "श्राप", हो तो कौन जाने ? ●

20

कोई है

अर्जुन 'अरविंद'

दफ्तर से लौटते समय घर के अहाते में घुसा तो आठ बज चुके थे। भाटिया जी की बाल-सेना का जुलूस नदारद था। सोचा—हो न हो आज कुछ नई बात हुई है। यह भी संभव है आज भाटिया परिवार बाल-सेना के साथ ही कहीं मेहमान बनकर चला गया हो। पर यह भी कुछ समझ में आने वाली बात न थी। भला इस मंहगे युग में कौन सिर-फिरा इस विशाल परिवार को अतिथि बनाना स्वीकार कर सकता है? भाटिया जी और श्रीमती भाटिया को छोड़, बच्चों की संख्या चार छह भी नहीं, पूरी तेरह है। जो सब मिलकर अहाते में एक साथ इकट्ठे होकर जुलूस निकालते, कभी सभा करते और कभी-कभार भाटिया व श्रीमती भाटिया को अपनी मांगें मनवाने के लिए आंदोलनात्मक धमकी देते। धमकी कारगर न होने पर प्रदर्शन, जुलूस और तोड़-फोड़ की कार्यवाही की योजनाए बनती, पर श्री सम्पूर्ण भाटिया भी किसी कुशल मंत्री से कम न थे। कभी मांगो का कुछ अंश पूरा कर दिया जाता, कभी रसीले आश्वासन देकर टाल दिया जाता। अपनी बाल-सेना की कार्यवाहियों से पड़ौसी भाटिया जी असर-प्रूफ हो गये।

घर के चौक में बढ़ा तो बाल-सेना का एक भी सिपाही सामने न पड़ा। ऊपर पहुंच कर देखा—कमरे में अंधेरा है। दरवाजा खुला है और आशा बिस्तर मे गठरी बनी पड़ी है। मैंने ज्यों-ही आशा को झिंजोड़ा, वह चीख कर मेरे हाथ से लिपट गई। उसका शरीर बुरी तरह कांप रहा था और सांस धौंकनी की तरह चल रही थी। आशा को इस हाल में देख मेरे होश छू होने लगे। जी मे आया, मैं भी चीख मार कर पड़ोस को इकट्ठा करलूं, पर मैंने

ऐसा कुछ भी न किया और उसके समीप बिस्तर पर बैठ गया। कुछ देर बाद आशा को होश आया। मैं अब तक यही समझा था कि या तो आशा को रक्त का दौरा पड़ गया या उसने मेरे साथ मजाक किया है। लेकिन कुछ देर बाद पता चला कि आशा ने मेरे साथ मजाक नही किया। वह डर गई थी। जब आशा से डर वाली बात सुनी तो हंसी के मारे पेट में बल पड़ गये। आशा हैरान सी कहने लगी—'तुम्हें क्या हो गया ?'

'आशा, पगली तो तुम हो गई हो। कॉलिज ग्रेजुएशन करके भी तुम ऐसी बातों पर विश्वास करती हो।'

'विश्वास-अविश्वास की बात छोड़िये। अनुराधा दी ने कुछ देर पहले अपनी आँखों से देखा है।'

'तुम्हारी अनुराधा दी ठहरीं पुराने संस्कारों की। उन्हें वहम भी हो सकता है।'

'अनुराधा दी को वहम होगा ! तो और सुनो।' आशा की आँखों में भय सा काँपने लगा। कहने लगी—'तुम दफ्तर से जल्दी लौट आया करो। मुझे अकेले में न जाने कैसा भय लगता है।'

उस रात कठिनाई से आशा को बातों में व्यस्त करना पड़ा। जब वह भय की बात भूल गई और उसकी आंखों में नींद समा गई तो मैंने सन्तोष की सांस ली।

मैं इस घर में नया-नया था। अपनी एक अदद पत्नी आशा के साथ यहाँ आये एक सप्ताह ही बीता था। दैनिक 'आवाज' में सह-सम्पादकी मिली थी। फिर चार सौ रुपये मासिक वेतन पाकर किसी अच्छे फ्लेट में रहने की केवल कल्पना-मात्र ही तो कर सकता था। दिल्ली जैसे शहर में किसी अच्छे मकान का होना कोई आसान बात नही है। मैं जिस मकान में लगभग जम-सा चुका हूँ वह पुराने तरीके का बना भारी भरकम मकान है। पर आश्चर्य है कि उसका अधिकांश भाग खाली ही पड़ा है। मुझे छोड़कर केवल दो परिवार ही उसमें रहते हैं। पहला राजेश खन्ना का, जिनकी श्रीमती अनुराधा खन्ना से आशा की खूब पटने लगी है। दूसरा वही भारी भरकम परिवार श्री सम्पूर्ण भाटिया जी का है। जिसकी सम्पूर्णता देखते ही मेरी आँखें चकराने

परिणति—3

लगती हैं। भाटिया जी से आज तक बात न हो सकी है पर खन्ना कभी-कभार अहाते के बाहर या ऊपर बरामदे से निकलते समय मिल जाते हैं और औपचारिक बात हो जाती है।

आज रविवार है। इसलिए सुबह जल्दी उठने को मन न हुआ। बिस्तर से निकलने के बाद जब स्नान करके निकला तो खन्ना अपने बरामदे में टहलते दिख गये। नमस्ते हुई और वह मेरे पीछे हो लिये। कमरे में पहुंच मैंने कुर्सी उनकी ओर बढ़ा दी। खन्ना अपनी स्वाभाविक मुस्कान बिखेरते कुर्सी पर बैठ गये। उनकी आँखें चश्मे के पीछे से कमरे का निरीक्षण करने लगी। तभी आशा चाय ले आयी। राजेश खन्ना ने चाय के बीच वही बात छेड़ दी जिससे गई-रात आशा डर कर भीगी बिल्ली हो गई थी।

खन्ना कह रहे थे—'अब यह मकान छोड़ देने में ही खैर है श्रीमान्! नहीं तो किसी भी समय परेशानी में फँस सकते हैं।'

'मैं आपका आशय नहीं समझा खन्ना जी?'

'अजी यह तो जगह ही कम्बख्त ऐसी है। भाटिया परिवार तो लम्बे समय से यहाँ रहता है। श्रीमती भाटिया एक दिन अनु से कह रही थी। यहां जरूर कोई न कोई असर है। अनेक परिवार यहाँ से इसी कारण खिसक चुके हैं। सुना है एकाध व्यक्ति तो इसी घर में समा गये हैं।' एक लम्बी सांस खींच कर खन्ना बोले—'हां, अनु ने तो कल सुबह से कुछ नहीं खाया। परसों उसे कुछ दिखा है।'

'यह सब वहम है खन्ना जी!'

'आपका कहना ठीक है। मैं भी पहले ऐसा ही समझता था, लेकिन जब से अनु ....'

'आप भी किस अंध-विश्वास में पड़े हैं श्रीमान्! अनु भाभी को कुछ नहीं हुआ है। उन्हें कहीं जुकाम आदि की शिकायत हो गई है?'

'मैं अपना वाक्य पूरा भी न कर पाया था कि आशा बोल पड़ी—'मेरा तो रात दम ही निकलना बाकी रह गया था बस! रात-भर न जाने कैसे-कैसे सपने आये।'

'पहले अनु भाभी को कुछ गिनाया जाय, बच्चो आगा।' तीनों उठ खड़े हुए और खन्ना के कमरे में पहुंच गये, पीछे से श्रीमती भाटिया भी अपनी बाल-सेना के सबसे छोटे जवान को जो अभी दो वर्ष का है, कन्धे पर उठा कर आ गई —'यह तो मुआ मकान ही कुलच्छना है! हनुमान मन्दिर में प्रसाद चढ़ाओ, ठीक हो जायेगी!'

मैं हैरान! मैं दौड़ा और निकट की गली से डॉक्टर को बुला लाया। डॉक्टर ने श्रीमती खन्ना का परीक्षण कर कहा—'विशेष बात नहीं है। मस्तिष्क का संतुलन बिगड़ गया है। इन्हें कुछ देर आराम से नींद लेने दीजिये। इसके लिए गोलियां दिये देता हूँ, ठीक हो जायेगी।'

श्रीमती खन्ना दो तीन दिन बाद ठीक हुईं। फिर भी हर कभी चौंक जातीं। और आशा का यह हाल था कि शाम होते ही डरने लगती। कभी-कभी सपने में चीख उठती।

मकान में रहने वाले पूरे परिवारों के मानसिक संतुलन अस्त-व्यस्त हो गये। एक दिन भाटिया जी बोले—'क्या करें श्रीमान् इस शहर में मकान ढूँढना बड़ा कठिन है। नहीं तो हम इसी समय मकान को छोड़ सकते हैं।'

खन्ना का बुरा हाल है। वह बेचारे शर्म के मारे किसी से कुछ कहते भी नहीं। उन्हें भय है—लोग क्या कहेंगे? कैसा अंध-विश्वासी है? फिर भी वह साहस कर मेरे पास चले आते। मैं वहम दूर करने के लिए कुछ एक शब्दों के अतिरिक्त उन्हें दे भी क्या सकता हूँ?'

सर्दी अपना रंग गहरा कर चुकी है। शाम हुई कि सब बिस्तर में दुबक जाते हैं। भाटिया जी की बाल-सेना अब अहाते में नहीं आती। कल ही की बात है। रात के नौ बज चुके थे। मैं बिस्तर में लेटा कोई उपन्यास पढ़ रहा रहा था तभी श्रीमती खन्ना की चीख सुनाई दी। मैं खन्ना के कमरे की ओर दौड़ा, श्रीमती खन्ना कह रही थी—'हाय राम! मैंने अभी-अभी देखा है, दो छोटी-छोटी आँखें सुलग रही थीं। मैं ज्यों ही बर्तन साफ कर कमरे में आने लगी मेरी ओर हाथ बढ़ाया।

मैंने श्रीमती खन्ना से कहा—'तुम मेरे साथ आओ बाहर, मुझे भी दिखाओ क्या है?'

'नहीं दय्या ? उधर देखते ही मेरे तो प्राण सूखते हैं ।

'मैं खन्ना को साथ-ले छत पर उस ओर बढ़ा जिधर श्रीमती खन्ना ने संकेत किया था । मकान के एक कोने में बड़ा पीपल का वृक्ष है । जिसकी टहनियां खन्ना की छत पर भी फैली हुई हैं । पीपल की टहनी हिल रही थी । खन्ना ने कहा —'वह आंखों की तरह क्या चमक रहा है ?'

मैंने देखा और एक डंडे के सहारे टहनी को हिलाया । 'धड़ाम !' खन्ना का दम सूख गया । छत पर एक घायल बन्दर का बच्चा 'चीं....चीं....' करता चीख रहा था । उसकी पीठ से खून की बूंदें चू रही थी । कई दिनों से भूखा जान पड़ता था । मैंने श्रीमती खन्ना को आवाज दी—'अनु भाभी, देखो तुम्हारा भूत ! मैंने पेड़ पर से नीचे उतार लिया है; इस बिचारे के लिए कुछ दाना-पानी ले आओ ।'

आशा भी इधर आ गई । श्रीमती भाटिया भी चली आयीं । श्रीमती खन्ना ने देखा और शर्म से सिकुड़ गईं, फिर बोलीं—'मैंने तो हनुमान जी को चढ़ाने के लिए प्रसाद मंगाया था ।

आशा हंस पड़ी—'यह हनुमान जी ही तो हैं । इन्हें ही चढ़ा दो । सब हंसी से दोहरे हो उठे । श्रीमती खन्ना ने एक दोना बन्दर के आगे डाल दिया और शर्म से सहमी-सहमी अपने कमरे में भाग गईं ।

21

श्वेत नयन

शार्दूलसिंह कविया

शिला-खण्ड पर आसीन मोती ने अलस नेत्रों से उत्तर क्षितिज की ओर देखा । आकाश काली घटाओं से घिर गया है । चारों ओर फैली पर्वतमाला घटा की श्यामलता मे लिपटी बड़ी सुहावनी लग रही है। दूर तक फैले घने वृक्षों का बन शीतल वायु के झकोरों मे रह रह कर झूम उठता है । वर्षा की भीनी गंध से वायु में मादकता छा गई है । शीतल वायु का स्पर्श पा मोती का अंग अंग पुलकित हो उठा । उसके विकसित कपोलों पर अरुण आभा थिरकने लगी । काले विशाल नेत्रो मे एक चमक सी छा गई । उस युवा ग्वाले ने अपना पुष्ट हाथ शिला-खण्ड की ओर बढ़ाया और अलगोजों की जोड़ी उठाली । कुछ ही क्षण में अलगोजो की मधुर ध्वनि से पर्वत-प्रदेश गूंज उठा ।

कहीं वर्षा आगई तो नाला पार करना कठिन हो जायगा । इस आशंका ने अलगोज़ों के स्वर मंद कर दिये । वह शिला-खण्ड से उठ खड़ा हुआ । अलगोजों की जोड़ी गले मे लटका, लाठी कंधे पर रख लम्बी डगें भरता हुआ भेड़ों की ओर बढ़ चला । एक लम्बी किलकारी से पर्वत की गुफाएं गूंज उठी । भेढ़ों ने चरना छोड़ मोती की ओर देखा । भेड़ों को बटोर वह मार्ग पर आ खड़ा हुआ । अंगुली से एक एक कर सबको गिना । अलगोजों के मधुर संगीत से वन प्रदेश फिर शब्दायमान हो उठा । संगीत में रसमग्न मोती इठलाता हुआ आगे बढ़ रहा था और उसके साथ भेड़ों की एक धवल पंक्ति पर्वत के वर्तुलाकार मार्ग पर चली आ रही थी ।

गाँव के बाहर कुए को दूर से ही देख भेडें जल पीने को चंचल हो उठी ।

प्रस्थिति—

वे कुए की ओर दौडने लगीं। मोती ने देखा-कुए पर भूमा पानी भर रही है। भरे भरे हाथ, भीना रंग, हरे पल्लों की लाल चुन्दरी, कितना परिवर्तन आ गया है भूमा में विवाह के बाद। उसकी बाल-सुलभ सहज चचलता न जाने कहाँ जाती रही। पलकें ऊँची उठती ही नहीं। अगो में कैसा उभार आगया है। कितनी सुन्दर लगती है भूमा। मोती जल पीने को भूमा के निकट जा खड़ा हुआ। भूमा ने मोती को ध्यान-पूर्वक देखा। एक रहस्य-भरी मुस्कान उसके अधरों से कपोलों तक दौड गई।

"क्या बात है भूमा, कैसे हंस रही है ?" मोती ने कुतूहल के साथ पूछा।

जल पिलाते हुए भूमा ने छेड़ा, "बधाई दे तो बताऊँ।"

जल पीकर मोती ने जिज्ञासा के साथ पूछा, "बता न क्या बात है ?"

- भूमा ने मुस्कराते हुए कहा, "आज तेरी सगाई आई है।"

मोती ने सकुचाते हुए प्रश्न किया, कहाँ से आये हैं ?

"उस गाँव के हैं।"

"तेरे ससुराल के"

"हाँ"

भूमा कहा रही थी, "बड़े भाग्य-शाली हो मोती। मैंने उस लड़की को देखा है। तुम्हारी तरह लम्बी और तुम से ज्यादा गोरी। वह नित्य मेरे पास आया करती थी। जब विवाह की बात करती तो हँस कर भाग जाती थी। मुझे क्या पता कि वह मोती भाई की लुगाई होने जा रही है।"

मोती ने चाहा कि वह उस लडकी के बारे मे सब कुछ पूछले, पर जैसे मुँह पर ताला लग गया हो। मन मे रह रह कर प्रश्न उठते, पर होठों तक आकर शून्य में विलीन हो जाते। वह देर तक खड़ा रहा कि भूमा स्वय कुछ चर्चा छेड़े। भूमा ने गागर भरा। धीरे धीरे रस्सी समेटी। गागर उठाया और खटखट कुए से नीचे उतर गई। मोती देखता ही रह गया। एक बार मन में आई कि नाम तो पूछले उस लडकी का पर साहस न हुआ। भूमा गाँव की ओर चली जा रही थी। उसका नीला घाघरा घूमर नृत्य कर रहा था। लाल चुन्दरी हवा मे फरफरा रही थी। मोती एक टक उसकी ओर देखता रहा कल्पना के जगत् में तिरता-उतरता।

भेड़ें पानी पीकर घर की ओर चल दीं। ग्राम का शान्त वातावरण शब्दायमान हो उठा। मेंमनों ने ज्यों ही भेड़ों की आवाज पहिचानी एक साथ में में चिल्लाने लगे। एक अंधी बुढ़िया घर के आंगन में नीम की जड़ों मे बैठी माला जप रही थी। उसने मेंमनों की चिल्लाहट सुनी। माला गले में डाल लाठी के सहारे उठ खड़ी हुई। लाठी से रास्ता टटोलती रेवाड़े तक पहुंची और रेवाड़े का द्वार खोल दिया। मेंमनों की भीड़ रेवाड़े के बाहर दौड़ पड़ी। मेमने पूँछ हिला रहे थे और अपनी मां को ढूंढ़ने मे व्यस्त थे। ज्यों ही मा मिलती मेंमना अगले घुटने टेक पूँछ हिलाता हुआ स्तनपान करने में तल्लीन हो जाता। भेड़ वहीं खड़ी रह मुड़कर बच्चे की ओर देखती और अपनी सन्तान को पहिचान एक अद्भुत आत्मा सन्तोष का अनुभव करती।

द्वार पर बैठे मेहमानों ने देखा कि सिर पर लाल साफा बांधे, गले में अलगोजों की जोड़ी लटकाये, हाथ में लाठी लिए एक लम्बे कद का गठीला नवयुवक भेड़ों के बीच से चला आ रहा है। मेहमानों को दूर से ही देख युवक ने अलगोजों की जोड़ी हाथ में ले ली और पीठ पीछे छिपाने का उपक्रम करने लगा। उसने पास में आकर मंद स्वर मे मेहमानों का अभिवादन किया और बिना इधर उधर देखे अन्दर चला गया। उसके नेत्र अपनी अन्धी दादी को ढूंढ़ रहे थे जो रसोई घर में बैठी आटा छान रही थी। पैरों की आहट पहिचान दादी ने पुकारा "आगया मेरा मोती।" "हां मां" मोती अपनी दादी को मा कह कर पुकारता था। उसे क्या पता कि उसके कोई मां भी थी उसे पलने में रोता छोड़ चल बसी थी। उसने दादी को ही मां के रूप में पाया था और पाया था उन ज्योतिहीन नेत्रों का असीम दुलार जो दृष्टि हीन होकर भी सब कुछ देख रहे थे। मोती ने सूनी आंगन में खोल दी और रसोई घर में उस टाट के टुकड़े पर जा बैठा जो दादी ने पहले ही मोती के लिये बिछा दिया था। दादी ने आटे की परात एक ओर खिसका दी। उसने अपने मैले घाघरे से हाथ पोंछे और दोनों हाथ मोती की ओर बढ़ा दिये। दादी के कांपते हुए दुर्बल हाथ मोती को टटोल रहे थे। दादी मोती को गोद में खींच कर दुलार रही थी और बड़बड़ा रही थी। मेरे मोती की सगाई हो गई है अब जल्दी ही विवाह कर दूंगी। क्या भरोसा किनारे का पेड़ है किस दिन ढह पड़ूँ। पीठ पर हाथ फेरते हुए कह रही थी "कैसा बांका जवान बना है मेरा बेटा।"

दादी के अशक्त हाथों से दुलार का स्त्रोत बह रहा था। उसी में निमग्न मोनी एक शिशु की भाँति अपनी अंधी दादी की गोद में लोटने लगा। उसे ऐसा लगा जैसे वह एक छोटा सा दुध-मुँहा बच्चा हो। एक मोटा मेमना हो। उसका मन हो आया कि वह भी इन मेमनों की तरह अपनी माँ...... ....

अचानक डालू चौधरी चिलम में आग धरने रसोई घर मे आया।

"यह क्या हो रहा है? मारेगा क्या डोकरी को। मेमने तो भेडो के स्तन काट रहे हैं और यह यहाँ मेमना बना बैठा है।"

पिता की ललकार सुन मोनी सकपका कर उठा और बाहर भग गया।

"तूने इसे कितना सिर पर चढा रखा है मा! अब इसके गोद मे लेटने के दिन हैं।"

मरी मां की सन्तान है बेटा, उस बड-भागिन के पुण्य से पल गया है। आज सगाई के अवसर पर इसकी मा होती तो कितनी प्रसन्न होती।"

डालू ने देखा मा की आखो में आंसू भर रहे हैं। चिलम पर आग रखते रखते उसकी स्वय की आखें भी डबडबा आई। दो आंसू सूखे गालो से नीचे ढरककर कच्चे आगन मे विलीन हो गये।

अधी मा को उसी दशा मे छोड़ वह मेहमानो को चिलम पिलाने बाहर चला गया।

मागलिक गीतो के साथ जब पौत्र-वधू ने घर के आगन मे पैर रक्खा तो दादी के अधे नेत्र खिल उठे। मुरझाये जीर्ण मुख पर आनन्द की आभा छा गई। न जाने कब का संचित बल सक्रिय हो उठा। वृद्धा रात दिन काम मे जुटी रही। चार दिन तक आंगन मे खूब चहल पहल रही। काम काज से निवृत्त हो रात को वृद्धा हारी थकी जब चार पाई पर पडी तो एक अद्भुत आत्म-सन्तोष का अनुभव कर रही थी। नवागत बहू ने पहले से ही बिस्तर बिछा दिये थे। कितना सुख मिल रहा था उस बिस्तर पर लेट कर जैसे रेशम का बिस्तर हो। चार दिन मे ही वह बहू से कितनी घुलमिल गई है जैसे बर्षों से साथ रह रही हो।

रसोई का दरवाजा बद होने की आवाज सुन वृद्धा ने पुकारा "राधा क्या कर रही है? यहाँ आ। ढूढ़ने की अवसर से आंगन को ...

करती राधा पास मे आई और मन्द स्वर में बोली, "दादी जी लोटा लाई हूँ जल पी लो। वृद्धा बड़ी कठिनाई से चारपाई से उठी जल पिया और पड़ रही।

"रात को प्यास लगे तो मुझको जगा लेना।"

"नही बेटी, तुझे नहीं जगाऊंगी।"

"तो फिर यहाँ चार पाई के पास लोटा भरकर धर देती हूँ, पी लेना।"

"रहने भी दे मैं उठकर पी लूंगी।"

"अजी आप अंधेरे मे कहीं गिर पडोगी।"

यह सुन वृद्धा को हँसी आ गई। वह देर तक हंसती रही। मोती की मां की मृत्यु के बाद वह इतनी जोर से शायद पहली बार हंसी थी।

राधा ने चन्द्रमा के प्रकाश में दादी के नेत्रों की ओर देखा चांदनी की भांति श्वेत। वह सिर से पैर तक सिहर उठी। अपने शब्दों पर मन ही मन पछताने लगी।

राधा दादी के पिचके मुख की ओर देख रही थी, जिस पर कभी आशा, कभी उल्लास और कभी वेदना के भाव आते और चले जाते। बहुत रात गये मोती सोने को भीतर आया। उसने देखा राधा चारपाई के पास नीचे बैठी मा के पैर दबा रही है। वह दबे पांव वापिस लौटने लगा कि दादी ने पैरों की आहट पहिचान ली और पुकार उठी "मोती, आजा बेटा!"

"जा बहू सो जा।"

चन्द्रमा के शुभ प्रकाश में मोती ने देखा-गौरवर्ण की एक सुन्दर नवयुवती लजाती शरमाती आगन के उस पार चली जा रही है।

और सामने

मां का दुर्बल शरीर-चारपाई पर एक छाया-रेखा की भांति सिमटा पड़ा है। मोती ने पहली बार अनुभव किया कि उसकी मां वृद्ध हो गई है, बहुत वृद्ध। क्या भरोसा इस शरीर का!

मोती का अन्तर कांप उठा।

लगा, क्योंकि चेतना मे वह धोती का पल्ला उस पर रखती थी। अपनी बच्ची का बोध होने पर उसने नजर तो हटाली, लेकिन बहुत देर तक वह भाव उसे कौंधता रहा। उसने कई बार उसकी शादी के बारे में सोचा था और सोच कर ही रह गया। तभी कमला एक छोटी थाली में उसके लिए भोजन ले आई। गेहूँ के दो फुलकों पर दो अचार की मिर्चें थी।

सब्जी नही बनाई क्या? उसने वैसे ही पूछ लिया।

सब्जी मंगवाई ही नही।

महेन्द्र इस भाषा से परिचित था, इसलिए उसने आगे पूछा ही नही। वर्षो से वह इस पक्ति का आदी हो गया था। वह जानता था कि पैसे थे ही नही, सब्जी कैसे मगवाये। उसने रोटियाँ निगल लीं और पानी पीकर लेट गया। कमला सोने की खाट पर जाने लगी। उसके फटे पेटी-कोट के भीतर उसकी टांगे साफ दिखाई दे रही थी।

हवा की गति कुछ तेज हो रही थी, उसे चांद हिलता नजर आया। उसने देखा कि असख्य तारे नजर आ नह रहे थे। इक्के दुक्के बड़े तारे भी बहुत धुंधला गए थे। उसने एक सन्तोष का हाथ अपने पेट पर फेरा और नींद लेने की व्यवस्था करने लगा। जनता की भीड और उसका भाषण. क्या समां था, सोचकर उसका मन फिर तरगित हो गया। वह बहुत देर तक अपनी लोकप्रियता के गर्व को पान की तरह चबाता रहा। इस बहाव मे उसने कपड़े भी नहीं खोले थे।

हवा कुछ कम हो गई थी। पास में खड़े नीम की पंतियाँ हिलनीं बन्द हो गई थीं। उसे घुटन-सी हुई। उसने कपड़े खोले और एक कच्छे बनियान में आ गया। भविष्य की गुदगुदाती आशाओं की लोरियों से उसे नींद आ गई।

सुबह उस्मान ने आकर जगा दिया। मेज पर दो कप चाय के रखे थे। उस्मान ने उस समय यह विश्वास प्रकट किया—महेन्द्र जी, अब तो अपनी जीत में कोई शक नहीं।

महेन्द्र ने कहा—आज जनता सब समझने लगी है। भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद उभर कर सामने आ गए हैं। बेरोजगारी और मंहगाई 'क्लाइमैक्स' को छू गई हैं। वोटर इतना ही नहीं समझता। पच्चीस साल में वह काफी जागरूक हो गया है।

इसी बात पर तो रात की मीटिंग इतनी शानदार रही।

जनता हमारे साथ है उस्मान जी ! वोट हमारे समाजवाद को मिलेंगे।

दोनों कपों की चाय समाप्त हो गई थी। महेन्द्र ने कुंती को आवाज दी—बेटा चाय और लाओ।

कमला हल्का-सा घूँघट किए कुछ देर खड़ी थी। उसकी आँखें साफ दिखाई दे रही थी। चेहरे पर मजबूरी की झलक थी। तभी कुंती बिल्कुल सामने आ गई—'पिताजी चाय और बनाऊँ।'

नहीं, बेटा, कहा महेन्द्र ने और विवशता की घूँट निगल गया। तभी उसे अपनी भूल महसूस हुई और उसने उस्मान की ओर सन्मुख होकर पूछ लिया—

'क्यों उस्मान, चाय और बनवाऊँ।'

नहीं, नहीं, मैं तो पीकर आया था। आपका साथ देने के लिए पी ली थी और उसने अपना कप उल्टा कर दिया।

उस्मान महेन्द्र को बहुत वर्षों से जानता था। उन्होंने एक ही मंच से काम किया है। कांग्रेस तो आजादी के बाद ही छोड़ दी थी। देश में समाजवाद लाने के लिए वे एकजुट हो गये थे।

उस्मान ने अपनी जेब से बीड़ी का बंडल निकाला। उसमें से एक बीड़ी और फिर दियासलाई। उसमें तीली नहीं थी। महेन्द्र ने भी अपना बंडल निकाला। उसने भी बीड़ी निकाल ली और दियासलाई लेकर उपस्थित हुआ। महेन्द्र ने सुरेन्द्र से दियासलाई लेते हुए पूछा—'बेटा तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई का क्या हाल है ? तभी कुंती ने उसकी चुगली कर दी—'पिताजी, यह मास्टरी में फेल हो गया है।' सुरेन्द्र ने कुंती की ओर आँखें निकाली। पिता जी की उपस्थिति में उसने इतना ही किया। तभी कमला ने आकर उसकी शिकायत की—'दो तीन दिनों से यह कुछ भी नहीं कर रहा है। बाहर घूमता रहता है।'

कुंती ने बात आगे जोड़ दी—यह किताबों को फाड़ता रहता है।

कु अपनी मुस्कान, कमरे में तीन बार पेश हुई, कहकर सुरेन्द्र भीतर चला गया।

महेन्द्र प्रताप ने अपनी बीड़ी सुलगाई और उस्मान ने अपनी। कमरे में धुँआ भरने लगा था और उसके साथ ही महेन्द्र के चेहरे की रेखायें और गहरी होती जा रही थीं।

उसके बाद दोनों ही उठकर बाहर निकल गए। महेन्द्र अपने निकट परिचित मेडिकल स्टोर पर जाकर बैठ गया। उस्मान ने 'नमस्ते' करके विदा ली। स्टोर का मालिक महावीर भी पुराना राजनीतिक कार्यकर्ता है। उसने अपने पैसे से यह स्टोर खोल लिया है। अतः सक्रिय राजनीति से अलग-सा हो गया। केवल चर्चायें कर लेता है। आज महेन्द्र बड़े उत्साह से गया है, क्योंकि उसकी पार्टी की बड़ी चर्चा है और उसकी जीत असंदिग्ध होती जा रही है। महेन्द्र आज का ताजा समाचार-पत्र सामने की मेज से उठाकर पढ़ने लगा। महावीर अपने कार्य में व्यस्त है। थोड़ी-सी देर में ही महावीर कार्य से निवृत्त होकर अपनी कुर्सी पर बैठ गया है, महेन्द्र ने करीब-करीब अखबार पढ़ लिया। इस अखबार में इस क्षेत्र की भी चर्चा है।

महेन्द्र ने महावीर के सामने अखबार का वह पृष्ठ रख दिया और 'हैड लाइन्स' की ओर अंगुली से इशारा किया। महावीर मुस्कराया।

क्यों, अब क्या कहते हैं, महेन्द्र बोला।

अब भी ठीक कहता हूँ, महेन्द्र, तुम्हारा उम्मीदवार नहीं जीतेगा।

वाह यार, अब भी शक है, माहौल कितना तकड़ा बना है।

माहौल एक रात में बिगड़ जायेगा।

एक रात में बिगड़ जायेगा ? महेन्द्र ने उदास भाव से अपना निश्चय व्यक्त किया।

भाई, रात-रात में बातें बनती हैं, तुम्हारा एक महीने का श्रम एक रात में साफ ! तुम लोग चिल्लाते हो,""जनता क्या है ? महावीर मजाक की भाषा में बात कर रहा था।

ये बातें सदा नहीं रहती, जनता में कितना असन्तोष है। भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, बेईमानी, रिश्वत, क्या जनता उब नहीं गई है इससे ! रात मीटिंग में थे तुम। कोई बीस हजार की भीड़ थी।

ऐसी मीटिंगें बीस साल से देख रहा हूँ। मित्र ! तुम्हें भीड़ चाहिए, भीड़ मिल रही है और राजवालों को राज, और फिर उसने एक लम्बा सांस लिया जिसमें निराशा की गंध थी।

महेन्द्र ने फिर बीड़ी सुलगाई और उदास-सा हो गया। महावीर ने उसके चेहरे को देखा। उसे दया आ गई। उसने ढाढ़स बंधाने की नीयत से कहा– 'हमें आशावादी तो होना ही चाहिए' इसी वाक्य के साथ उस्मान वहाँ आ पहुंचा था। उसने विश्वास के साथ कहा—'अजी, गई कांग्रेस।

अब महेन्द्र का डूबा हुआ विश्वास जाग गया। उसने ताल-ठोक कर कहा- हम लाखों से जीतेंगे।'

महावीर यह कहकर उठ गया— उस दिन मैं घर आकर बधाई दूंगा।' वह इस विवाद में नहीं उलझना चाहता था। उसका ग्राहक आ गया, वह दवाई देने में लग गया।

महेन्द्र ने कमर-तोड़ मेहनत की। उस्मान भी करीब-करीब लगा रहा। उन्होंने जगह-जगह अपने उम्मेदवार के दर्शन कराए, जनता की भीड़ में भाषण दिए और वोटों का आश्वासन मांगा। जनता ने सौगन्ध खाकर वोट देने का वायदा किया। चुनाव हो गया। महेन्द्र और उस्मान आश्वस्त थे। उन्होंने महावीर से आकर कहा—वे केवल बधाई ही नहीं, मिठाई मांगेंगे।

चुनाव-परिणाम से जो निराशा महेन्द्र को हाथ लगी, उससे वह टूट गया था। चौदह हजार से पराजय मिली, यह कोई मामूली बात नहीं थी। रेडियो सुनने के बाद उसने रेडियो बन्द कर दिया। उसे ऐसा लगा कि उसके शरीर को किसी ने पीटकर डाल दिया हो। उसके पैरो के प्राण-से निकल गए थे और वह केवल पड़ा रहना चाहता था। उसे अपनी पच्चीस साल की तपस्या बेकार-सी लगी। उसके परिवार को जो कष्ट मिला, उसे एक-एक कर याद आने लगा। उसके एक मित्र मनसून ने उसे समझाया था। पर महेन्द्र नहीं माना। वह समझौता नहीं कर पाया, कर नहीं सकता था। और फल यह हुआ कि आज उसके दोस्त के पास सब कुछ है, कार, बगला, जमीन है उसके परिवार को पेट भर रोटी नहीं है सभी बच्चे बेकार हो गए हैं। मुन्नी की शादी के लिए पैसे नहीं है। उसे रोना आ गया और उसने अपने आँसू अपनी पुरानी घिसी चादर से पोंछ लिए।

कुंती, कमला, सुरेन्द्र सभी ने खबर सुनली थी और वे रसोई में अलग चले गए थे। सारे घर में मायूसी का माहौल था।

महेन्द्र नहीं चाहता था कि कोई वहाँ आए। महावीर तो कम-से-कम न आए। लेकिन महावीर आ ही गया, यह उसके जीवन पर व्यंग है, उसे ऐसा महसूस हुआ।

महेन्द्र चुप था और महावीर भी। दोनों आमने सामने बैठे थे। महेन्द्र की आँखें लाल थीं। उसकी सारी पीड़ा आँखों में आ बैठी थी। महेन्द्र ने महावीर की ओर, और महावीर ने महेन्द्र की ओर देखा। महेन्द्र की आँखें छलछला आईं। उसने अधीर होकर कहा-- महावीर, मैं मर गया हूँ, मातम मनाने आए हो न……।

नहीं, महेन्द्र, मेरी हमदर्दी है तुम्हारे साथ।

मैं रोना चाहता हूँ, इतना रोऊँ कि दुनियाँ मेरे आक्रोश को सुन सके, लेकिन मैं सोचता हूँ, दुनियाँ मेरे पर हँसेगी। मेरे बच्चे मेरे पर हँस रहे हैं।

इतना कहकर महेन्द्र फूट-फूट कर रोने लगा था। महावीर को इतना विश्वास नहीं था कि महेन्द्र निराशा की पराकाष्ठा तक पहुँच जाएगा। महावीर का ढाढस भी महेन्द्र को ढाढस नहीं दे सका।

उस दिन महेन्द्र ने रोटी के दो कौर तोड़े और पानी पी लिया। कमला ने देखा कि सभी रोटियाँ बची पड़ी हैं।

तीन दिन के बाद वह घर से निकल कर महावीर के पास गया। उसने धीरे से कहा—महावीर, मैंने कांग्रेस का फार्म भर दिया है। अब मैं भ्रष्टाचारी बनूँगा। मन्त्रियों के पास काम के लिए जाऊँगा। बीच में पैसे खाऊँगा। मेरे बच्चे तो भूख नहीं निकालेंगे। मेरी मुन्नी की शादी कर दूँगा। ठीक है न, महावीर।

तब महावीर ने कह दिया कि—बुरा न मानो तो एक बात कह दूँ।

कहो न……

धीरे से कहता हूँ, वह यही कि तुम यह भी नहीं कर सकोगे।

महेन्द्र फिर नये सिरे से चिन्ता में पड़ गया था।

23

राज कलह का मूल

भाग चन्द जैन

'इधर मत आओ, भागो, अपनी जान बचाओ।' महावत लोग जोर २ से पुकार-पुकार कर सभी सरदारों व उमरावों को सचेत कर रहे थे।

दिल्ली दरबार के बाहर राज मार्ग पर हाथी उन्मत्त हो रहा था। वह महावतों के काबू के बाहर था। किस महावत की माँ ने ऐसा दूध पिलाया कि उस मस्त हाथी पर नियन्त्रण कर सके। सभी लोग भयभीत थे। परन्तु इसी समय बादलों की ओर से सूर्य की किरणें फूटीं, अभिमन्यु सम अल्पवयस्क एवं सुन्दर राजकुमार राज ड्योढ़ी की ओर से आते दिखाई

दिये। पतला-दुबला शरीर, गौर वर्ण, चमचमाता तेजस्वी मुख मण्डल राजसी वस्त्रों में शोभित, कमर में बंधी तलवार विश्वास के साथ आगे बढ़ रहा था। सभी उपस्थित व्यक्तियों ने राजकुमार को वहीं रुकने का संकेत किया। पर यह क्या ? बालक राजकुमार दृढ़ता एवं आत्म विश्वास के साथ बढ़ता ही आ रहा था जिस प्रकार समुद्र में उठने वाली उन्मत्त लहरें किसी के संकेत पर नहीं रुक पाती, बहते हुए पानी की तीक्ष्ण धार पर्वतों के नुकीले हिस्सों को काटे बिना नहीं मानती। कदम बढ़ते जा रहे थे। सभी लोग मारे भय के कानाफूसी कर रहे थे। अनेक प्रकार की आशंकाएं उनके मन में सतत उठ रही थीं।

उन्मत्त हाथी ने अप्रत्याशित रूप से आक्रमण किया, बालक पर टूटा, महावत लोग लाख पुकारते रहे..........परन्तु वीर बालक पीठ दिखाना नहीं जानता था। वहाँ तो एक ही लक्ष्य था, मैदान से भागते नहीं, डटकर मुकाबला करते हैं, सिर झुकता नहीं, कटता ही है। हाथी से मुठभेड़ होते ही एक हाथ तलवार का ऐसा मारा कि वह चुपचाप दुम दबाकर पीछे भागा। सभी दर्शक आश्चर्य चकित थे, परिचय प्राप्त करने के लिए उत्सुक थे।

ये थे परम शूरवीर, तेजस्वी बालक किशनगढ़ के राजकुमार सांवतसिंह जी। बाल्यावस्था में ही जिनकी वीरता की धाक दिल्ली बादशाह के हृदय पटल पर अंकित हो गई थी। यह घटना संवत् १७६६ की थी जबकि आप केवल १० वर्ष की अल्प आयु प्राप्त थे।

इस वीरतापूर्ण कार्य की यह सुरभि सर्वत्र व्याप्त होने लगी। कई सरदारों व उमरावों ने बधाइयां दी व भूरि भूरि प्रशंसा भी की..............परन्तु कुछ सरदारों के हृदय में सहज मानव स्वभावानुसार ईर्ष्या रूपी अंकुर पैदा होने लगे। उनकी आंखों में वीर सावतसिंह की वीरता भी खटकने लगी। परन्तु सत्य तो यह है कि—

प्रतिध्वनि

"जाको राखे साइयां मार सके नहि कोई।
बाल न बांका कर सके जो जग बैरी होई॥"

संवत् १७७४ में दिल्ली के बादशाह फर्रुखशियर ने नवाब मुजफ्फरखां जयपुर के महाराज जयसिंह और कोटा के महाराज भीमसिंह को मेवासा में स्थित थूण की गढ़ी पर अपना अधिकार करने के लिए भेजा था। गढ़ी का रास्ता बहुत ही बेढंगा था, उस पर चढ़ने का कोई रास्ता नहीं था। गोलियों की बौछार के आगे किसकी हिम्मत जो अपने प्राणों को मौत के मुंह में डाल कर दुश्मन से दो हाथ निपटने का साहस करे। जहां प्राणों का मोह होता है वहां विजय की आशा दुराशा मात्र कही जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। युद्ध जारी था..........सनसनाती गोलियां हवा को पाला मार रही थी, चमचमाती तलवारें आकाश में बिजलियां चमका रही थी, थूण की गढ़ी के वीर पुर्जे-पुर्जे कट रहे थे। विजय की कोई आशा जुगनु की भांति भी दृष्टि-गत नहीं हो रही थी, समस्त आशाओं पर तुषारापात सा हो रहा था। ऐसे समय में नवाब नोलादरखां बख्शी के भाई ने बादशाह से अर्ज कर राजकुमार श्री सावतसिंह को उक्त स्थान पर भिजवाने का आग्रह किया। बादशाह ने तुरन्त हुक्म दिया।

राजकुमार ने युद्ध वस्त्र धारण किये, स्त्रियों ने मंगल कलश सजाये। वीर ने घोड़े पर एड़ लगाई और पहुँच गये अपने गन्तव्य स्थान की ओर ....केहरी सम घुस पड़े गोलियों की बौछार के मध्य, हाथी पर सवार होकर, गढ़ी के फाटक तक अपने शौर्य व बल पराक्रम से सफलता के साथ पहुँच गये वीर सावतसिंह। उनके अन्तर में तो केवल एक ही साध था। रणक्षेत्र से प्राण बचा कर पीछे नहीं हटना वरन् मरण त्यौहार जो राजस्थान की परम्परा है, मनाने के लिए प्रतिपल आतुर रहना। यहां का बच्चा-बच्चा वीर होता है, वह रणक्षेत्र में दुश्मन को मारने व मरने के लिए

क्या नहीं करता ? समस्त बहादुरों का ध्यान उनकी ओर था। उन्होने मदमस्त हाथी से फाटक को तुड़वा दिया और देखते-देखते ही सारी फौज गढी मे प्रवेश कर गई······ गढी पर विजय पताका फहराने लगी। बादशाह का स्वप्न साकार हो उठा। बादशाह वीर राजकुमार की अद्वितीय वीरता एव साहस पर मन्त्र मुग्ध था। यश सुरभि सर्वत्र फैलने लगी। बादशाह प्रसन्न होकर प्रशंसा की खिलअत, शमशेर आदि भेजा।

इनकी वीरता से केवल दिल्ली के बादशाह ही प्रभावित नही थे बरन मराठों के हृदय पर भी अमिट प्रभावपूर्ण छाप अंकित थी। इनके बारे मे बाजीराव पेशवा ने मल्हारराव से कहा था—

"बाजेराव मल्हार सा" कह तो गया अथाह।
और राव सब राव है, सावंत बात अथाह॥"

मल्हारराव को इन्होने (वीर सावंतसिंह) कर नहीं दिया और रण-क्षेत्र मे ही कर चुकाने का निश्चय किया। इनके हाथों के वार देख कर मराठे दंग थे, अन्त में इनसे कर न लेने का ही फैसला किया।

गद्दी पर बैठे अभी डेढ़ वर्ष भी पूर्ण नहीं हुआ होगा कि इनके अनुभ्राता बहादुरसिंह जी ने इनके राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। इस समय सावंतसिंह दिल्ली मे थे। दिल्ली बादशाह की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। मुगलों का पतन हो रहा था। एकता व शक्ति के स्थान पर फूट, स्वार्थ-लिप्सा एव निर्बलता के दर्शन हो रहे थे। मराठों का सूर्य तेजी से चमक रहा था। मराठे सावंतसिंह जी से प्रसन्न थे। अवसर के अनुकूल ही आचरण किया और वे सहायता के लिये मराठों के पास पहुँचे। मराठों ने किशनगढ़ नरेश का सहयोग हेतु प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार किया और एक बड़ी फौज के साथ वीर सावंतसिंह को बिदा किया।

भाई से भाई लड़ने के लिये रणक्षेत्र मे उतर पड़े। प्रश्न मान एवं प्रतिष्ठा का था। बहादुरसिंह जी का भी वीरता मे अद्वितीय स्थान था।

दुर्भाग्य

भक्ति का अनुपम पावन संगम भी प्रस्तुत कर, इतिहास में अपनी अलौकिक विशेषता प्रस्तुत करती है।

जहां कलह तहा सुख नहीं, कलह सुखन को सूल,
सबह कलह इक राज में राज कलह को मूल,
मेरे या मन मूढ़ ते, डरत रहत हो आय,
वृन्दावन की ओर ते, मति कबहु फिर जाय,
लेत न सुख हरिभक्ति को, सकल सुखिन को सार,
कहा भयो नृप हू भए, ढोवत जग बेगार,

भागचन्द जैन

एम. ए. बी. एड. प्रभाकर

यात्रियों का इन्तजार कर रहे थे ! प्रत्येक का प्रश्न मेरे सामने था "कहाँ चलोगे, बाबूजी ?" लेकिन मेरी निगाहें थीं कि किसी और को ही ढूंढ रही थी। मैंने उनसे पूछा, "क्यों भाई-मेरे, रामू रिक्शा वाला नहीं है क्या ?" मेरा पूछना क्या था कि सभी को सांप सूंघ सा गया, लगे एक दूसरे का मुँह देखने। मैं कुछ कहूँ-नहूँ कि एक बोल उठा, "इस ठिठुरती सर्दी में इतने तांगे-रिक्शा और यात्री कि अंगुलियों पर गिनने को, तिस पर भी बाबूजी पूछ रहे हो कि रामू रिक्शा वाला नहीं है क्या ? क्यों बाबूजी हम सब मर गये क्या ?"

इस पर दूसरे ने कहा, "बाबूजी, रुकिये ! मैं बुलाकर लाता हूँ, रामू को"। यह कहकर, रिक्शा स्टेंड की ओर बढ़ा। मैं भी उस ओर बढ़ चला। मैंने देखा उस युवक ने, अपने आप में सिमटकर लेटे हुए रामू को उठाया, तो बड़बड़ाते हुए बोल उठा, "कौन है, भाई ! काहे को परेशान करता है?"

"अरे ! रामू, देख सामने कौन खड़ा है ?"

"कौन है ?" कहकर वह एक दम खड़ा हुआ और मेरी ओर मुख करके बोला, "किधर चलें बाबूजी !"

"रामू पहचानता नहीं।" उसने कोट के कालरों से व हैट से ढके चेहरे की ओर गौर से पास आकर देखने व पहचानने का प्रयत्न किया, लेकिन विफल हुआ। मैं रिक्शा में बैठ गया और चलने को कहा। वह चल दिया। बिजली का खम्भा आया, तो मुड़कर देखा, मैंने भी हैट ऊपर उठाया। वह देख कर आश्वस्त हुआ और बोल उठा, "ओह! बाबूजी आप!" फिर मुड़कर मेरी ओर देखते हुए पूछा, "मगर, कहाँ चलोगे बाबूजी !"

"फिर भी पूछने को रह गया क्या कुछ ?"

"हाँ बाबूजी ! पहले जब आप आये थे, तो धर्मशाला में रुके थे, लेकिन अब वहाँ तो बहुत बड़ा होटल बन गया है ?"

"क्या ? धर्मशाला की जगह होटल !"

"हाँ बाबूजी।"

"तो वहीं ले चल।" वह रिक्शा चलता रहा, मैंने पूछा, "रामू एक बात समझ में नहीं आई !"

"क्या बाबूजी ?"

"यही कि धर्मशाला की जगह, होटल कैसे बन गया ? धर्मशाला के बूढ़े अध्यापक को एकदम यह सूझा कि चट होटल का रूप दे दिया !"

"बाबूजी ! बूढ़ा तो..................!" उसका गला भर आया। मेरे मन में सिरहन-सी उठी और सारे शरीर में फैल गई। मैंने पूछा, "बूढ़े को क्या हुआ ?"

"वह तो राम का प्यारा हो गया।"

"तो फिर, यह होटल किसी और का होगा।"

"नहीं बाबूजी उसी के जमाई का है !"

"बूढ़े-अध्यापक के एक ही तो लड़की थी—नीलिमा !"

"हाँ-हाँ बाबूजी वही नीलिमा, उसकी बेटी ! उसके पति का होटल है।" रामू ने रुककर, फिर मेरी ओर मुख करके बोला, "बाबूजी, इस होटल में न जाओ, तो अच्छा !"

"क्यों, भाई ?" मेरा कौतूहल बढ़ गया।

"बस यूँ ही !"

"नहीं, कुछ तो कारण होगा !"

"और कुछ नहीं। बस, धर्मशाला और होटल में बड़ा ही अन्तर है !"

मैं खिलखिला कर हँस पड़ा। उसने पीछे मुड़कर देखा। मैंने पूछा- "क्या अन्तर है ? अधिक खर्च का ?"

"खान-पान का ?"

"वह भी, नहीं !"

"फिर क्या ? पूछूं, इससे पूर्व ही मेरा

मैंने चुटकी बजायी और सीटी-भी। वह फिर मुस्

उसके जमाई में अन्तर है, न !"

"हाँ बाबूजी बहुत बड़ा अन्तर है !"

मैंने उससे कहा, "फिकर न कर, यार ! सब

दूर से ही होटल की बत्तियों की ओर इशारा करते

"वह रहा होटल, यहाँ सब काम होता है जो न होना

"फिर क्या हुआ ?"

"बाबूजी यह आप कह रहे हैं कि क्या हुआ ?"

"इसमें क्या बुरा ! समय का फायदा सभी उठा

जमाई ही क्यों पीछे रहे ?"

"हूँ ! लेकिन बाबूजी, क्या हमारे बाप-दादाओं

किये थे ? क्या यह वही राम-कृष्ण की भूमि नहीं ?"

मैं उसकी भावपूर्ण बातों से प्रभावित हुआ। लेकि

यह क्रम वहीं टूट गया, क्योंकि होटल के द्वार पर रिक्शा

मुख्य द्वार पर चौकीदार खड़ा था। उसने बड़े ही अदब से

मैं अन्दर घुसा। काउन्टर पर उस भरे पूरे युवक को देखा, औ

पर चौड़ी मुस्कान होंठों पर लाने का प्रयत्न कर रहा था। उ

का लड़का देखकर मुझे किसी बाहर की मुस्कराहट का [illegible]

[illegible] हुए, "आइए पधारिये ! किस प्रकार का

क" !"

"बस, ऐसा कमरा कि वहीं रातों की नींद सुख से गुजर जा

"बिल्कुल दुरुस्त फरमाया आपने।" फिर मैं [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

"सर, क्या लाऊँ ह्विस्की, ब्रांडी, रम !!"

"नहीं—नहीं ! केवल एक कप चाय या काफी ।"

"अच्छा बाबूजी !" बैरा चल दिया ।

मैंने कपड़े बदल कर 'नाइटड्रेस" पहन ली । आदम—कद काँच के सम्मुख खड़ा होकर बालों में कंघी कर रहा था कि सामने का भिड़ा हुआ दरवाजा खुलते देखा और एक खूबसूरत कमसिन को, जो बड़े ही शोख व नज़ाकत भरे अन्दाज से हाथों में चाय या काफी का सामान पीतल की तश्तरी में सजाये हुए प्रवेश कर रही थी । बोली....नवागन्तुक के लिये बान्दी सेवा में उपस्थित है ।

परन्तु मैं सम्भल गया और हँस पड़ा, उसके 'बांदी' शब्द कहने के अन्दाज से । वह सकपका गई । मैंने कहा, "खूब बहुत खूब ! स्वतन्त्र भारत में भी बान्दियाँ बसती हैं, यह अहसास मुझे आज हुआ । तुम जा सकती हो !" मैंने कड़े शब्दों में कहा ।

वह उठी, शर्म के मारे पसीना-पसीना होकर वहाँ से लौट गई । मैंने थोड़ा जोर से कहा "अच्छा हो, कि इस प्रकार की विमुख—गति न अपनाकर शुद्ध और जीवन-यापन का साधन ढूँढो !" उसने मुड़कर ऐसे देखा जैसे कह रही हो तुम्हारे जैसे सब तो नहीं हैं । प्रश्न गहरा था, अन्तः—स्थल में बैठ गया !

दरवाजा बन्द किया । चाय बनाकर पी । फिर लेट गया और सो गया गहराई में, जहाँ होटल की जगह हिलोरें ले रही थी धर्मशाला । जब मैं पहली बार यहाँ आया, तो धर्मशाला में घुसने से पूर्व न जाने कितने प्रश्नों की झड़ी लग गई थी, कौन हो ? कहाँ से आये हो ? यहाँ किस काम से आये हो ? क्या करते हो ? और जाने से पहिले ही प्रश्न कि कब जाओगे ? शराब कितना पीते हो ? ' मेरे दिये गये जवाबों से सन्तुष्ट होने बाद, उस बूढ़े व्यवस्थापक ने कमरा दिखाया । कमरा साधारण था, पर ाई इतनी कि तारीफ़े-क़ाबिल ? उसने पूछा था, "ताला है ?" मेरे नहीं हने पर उसने छड़ी धरती पर ठोकते कहा, "ऐ नौजवान ! ताला हमेशा पना साथ रखो । जानते नहीं कि एक ही ताले की हजार चाबियाँ और क ही चाबी के हजारों ताले होते हैं, समझे ।" उसके रोबदार शब्दों की ूँज बहुत देर तक मेरे कानों को सुनाई पड़ रही थी । जब मैं सोने लगा ो दूध का भरा गिलास भर भेजा ! बिना मँगवाये दूध का पहुँचना, सब

आश्चर्य की बात न थी। पूछने पर पता चला कि गाय दान में मिली हु
थी और समस्त यात्रियों को मुफ्त दूध दिया जाता था। यदि किसी की श्रद
हो, तो गायों के चारे के लिए चन्दे की पेटी में इच्छानुसार दान-स्वरूप कु
भी डाल सकता था। इस बात ने मुझे सपनों की दुनियाँ में पहुंचा दिय
कि कौन कहता है कि मेरे देश में दूध की नदियाँ नहीं बहतीं!

लेकिन आज उस दूध की जगह यहां बिकती हैं, शराब, काफी, चाय
साथ ही सुरा के संग सुन्दरी भी! धीरे-धीरे नींद के आवेश में खो गया।

आँखें खुली तो प्रातः के साढ़े छः बजे थे। अभी धुंधल का सा था।
सोचा कि घन्टी बजाकर बैरे को बुलाऊं, कि खुसुर-पुसुर सुनी। उठकर
दरवाजे के पास आया, सुना, "यार यह, नौजवान भी कैसा है कि हाथ में
आई कबाब की हड्डी से भी नजर फेर ली"

दूसरा कह रहा था "यार! रात लता की सूखी गई। इसके पल्ले
कमरा ही मनहूस पड़ा है।"

"अरे! बाबूजी को उठा, तो सही!"

"क्यों, उठाऊँ! रात को ही 'टिप' नहीं दी!"

"अच्छा!"

"हाँ!"

"फिर?"

"मैं क्यों उठाऊँ?" मैं अधिक सुनना नहीं चाहता था। मैंने बिना
आवाज किये कड़ा खोल दिया, फिर बिस्तर पर लौट आया और कुछ क्षण
बाद घण्टी के बटन पर अँगूठा रख दिया। बैरा बोल उठा, "जी
हुजूर!"

"अन्दर चले आओ! दरवाजा खुला है!"

"बाबूजी, आपने दरवाजा अन्दर से बन्द नहीं किया।"

"क्यों?"

"ऐसे ही पूछ रहा था, बाबूजी!"

"क्यों, चोरियाँ होती हैं क्या?"

"हे! हे!" वह खीसें निपोरता रह गया।

मैंने उसे पास आने को कहा, तो सहमता हुआ पास आया। मैंने कहा, "अरे हाँ! रात को थकान के कारण कुछ याद ही नहीं रहा। ले ये पांच रुपये। मगर तेरे जैसा ईमानदार आदमी मुझे चाहिये।"

वह ही-ही करता ही रह गया। वह मेरे लिये चाय लेने चला गया। मैं भी सोगया बीती यादों में! बूढ़ा था कि सुबह साढ़े-पांच बजे ही भोर का गीत गाता हुआ, सबको जगा रहा था और आगाह कर रहा था कि जिस कार्य हेतु आये हो, पूरा करने को तैयार हो जाओ। मैं सुन रहा था फिर भी न उठा। बाहर दरवाजे पर बूढ़े ने लाठी की ठक-ठक की। मैंने सुनी, फिर भी लेटा रहा। बूढ़ा मन ही मन कुछ बड़बड़ाता आगे बढ़ गया। फिर आया, लगभग एक घण्टे बाद। उसने दरवाजे पर हल्की सी थपकी दी और कहा "मुसाफिर, इस दुनियां में हो या फिर किसी अन्य दुनियां में।" मैं चुप रहा। फिर बूढ़े ने पुकारा और कहा नौजवान! लगता है इस दुनियां से छुट्टी ले गये!

मेरी हंसी अब रोके न रुकी, फूट ही पड़ी। दरवाजा खोला। बूढ़ा नाराज नहीं हुआ, कहा "इस बूढ़े शरीर के साथ मजाक करना, भला कहाँ की मलमनसाहत है? फिर लौटते हुए कहा, "जाओ हाथ मुँह धोकर निवृत हो आवो। मैं जल्द ही निवृत होकर लौटा, तो कमरे में सादगी से परिपूर्ण एक बाला को दूध लिए हुए देखा। मैंने दूध देखते ही कहा, "सुबह-सुबह दूध अच्छा नहीं लगता, क्या चाय वाय नहीं मिल सकती!"

"चाय! छिः छिः कलेजा जलाने वाली चाय की बात करते हो! यहाँ नहीं मिलेगी!"

"नहीं मिलेगी?"

"नहीं, हरगिज नहीं! पीना है, तो दूध पीओ, अन्यथा बाबा को बुलाती हूँ।"

"कौन बाबा?"

"ओह, तो बाबा को ही नहीं पहचानते?" फिर उस बूढ़े अध्यापक की ओर संकेत किया और बोली, "बुलाऊँ या चुपचाप पीलोगे?"

पिता की तरह ही रोबदार थी। मैं गटागट पी गया। फिर............

बैरा चाय लेकर आ पहुँचा था। मैंने उसे पास बुलाया और धीरे से पूछा, "नीलिमा से मिला सकते हो ?"

"नीलिमा।" वह कुछ रुका। इधर-उधर देखा फिर बोला, "हमारे मालिक की पत्नि के बारे में पूछ रहे हो, बाबूजी।"

"हाँ, वह कहाँ है ?"

"होटल के पिछवाड़े में, एक छोटी-सी कोठरी में। सारा दिन गायों की सेवा करती है, बगिया को सींचती है। ऐसी सती-साध्वी, लेकिन मालिक हैं कि उसे फूटी आँख से भी पसन्द नहीं करते।"

"क्यों ?" प्रश्न अनायास ही निकल पड़ा। बैरा कुछ सकपकाया। फिर धीरे से बोल उठा, "मालिक को तो शराब और नई-नई छोकरी से मतलब है।"

"बस-बस। सुन, मुझे तू उससे पाच मिनट ही मिला दे।" यह कहकर दस रुपये का नोट उसकी ओर बढ़ाया। उसने बिना किसी हिचकिचाहट के ले लिया।

मैंने देखा, उस सौम्य, सती-साध्वी स्त्री को। उसने मेरे स्नेह के प्रति आभार प्रदर्शित किया, लेकिन पति के विरुद्ध उसने एक शब्द भी न कहा, और न सुनना पसन्द किया। वह गो सेवा व पौधों की रखवाली में मग्न थी। सभी गमों को वह बहा रही थी एक ही रूप में, सेवा के रूप में।

मैं लौट पड़ा। श्रद्धा की देवी ने एक गिलास दूध पेश किया। विह्वलता के मारे मैं कुछ भी न कह पाया। लौटकर देखा, तो उस हब्शी को देखा, जो कि जकड़े हुए था, रकासा को अपनी बांहों में। दिलो-दिमाग पर ऐसी ठेस लगी कि क्या देख रहा हूँ, मैं। कहाँ वह बूढ़ा और उसकी बेटी, और कहाँ यह वासना का पुतला। विधि की विडम्बना नहीं, तो और क्या ? इतना विमुख, विधर्मी, कुपथगामी ! किस प्रकार से बूढ़े का जमाई बना ! यह सोचने से परे था। मैं भी इस नर्क की गर्त से शीघ्रातिशीघ्र निकलने को

उद्यत हो उठा। रामू आया। वह मेरी बेचैनी समझ गया और मेरा सामान रिक्शा पर रखकर ले चला। दूर बहुत दूर, उस होटल से। न जाने कहां ? मैंने भी विरोध नहीं किया।

लेखनकर्त्ता,
मुरारीलाल कटारिया, स० अ०
प्रा० वि० मि० सराय कायस्थान,
टिपटा गढ़ के पास,
कोटा–6 (राज०)

25

भोला भक्त–ये फकीर

●

लेखक – नाथूलाल गुप्त

राजस्थान के दक्षिण पूर्व का सीमान्त—छबड़ा, जहां कलकल करती रेणुका सिंचित अगणित उद्यानों और आम्रवाटिकाओं में कूकती कोयल, गुंजन करते भ्रमरों से मन मयूर नर्तन कर उठता है। लगता है विश्व राजनीति से पीड़ित शान्ति, यहीं-कहीं विश्राति लीन हो।

यातायात के साधन नहीं हैं। केवल रेल मार्ग ही सम्पर्क सूत्र है। प्राकृतिक साधनों से सम्पन्न यह नगर अविकसित और अछूता सा है। सभी प्रकार की जातियों की निवास स्थली है यह। कुछ घर फकीरों के भी हैं, जिनका मुख्य व्यवसाय गाना, बजाना और मांगना है। ये तीतर भी लड़ाते हैं। कव्वाली गाते समय भाव-विभोर हो जाते हैं। इसकी प्रसिद्धि से ये स्थान २ पर बुलाये जाते हैं। जयपुर, अजमेर, कोटा, ग्वालियर, बड़ोदा तथा अहमदाबाद आदि नगरों का ये यदा-कदा भ्रमण करते रहते हैं। इस्लाम धर्म के साधक होते हुए भी इन्होंने एक धन्धा और अपना लिया है—अस्मी

प्रतिध्वनि–3

रमा कर, रुद्रमाला धारण कर ये साधू बन जाते हैं। भगवरभजन और मनन में आत्ममान करते ऐसा लगता है जैसे ये युगों के तपस्वी या मनस्वी हों। अहमदाबाद में साम्प्रदायिकता की भावना चरम सीमा पर थी। विश्व के दो महान् सम्प्रदाय हिन्दू-मुसलमान समरांगण में आमने-सामने थे। एक दूसरे का रक्त बहाने-सदैव-सदैव के लिये दूसरे का नामो निशान-मिटाने को। यहाँ के कुछ फकीर भी इसी द्वन्द्व में फँस गये थे।

हिन्दुओं ने उन्हें अपना साधन बनाना चाहा। मुसलमानों के विरुद्ध उन्हे भड़काया। परन्तु वे बहकावे में न आये। उन्होंने समझाया कि "हम साधु सन्यासियों को जाति-पाँति से क्या लेना। हिन्दू बमभोले के भक्त हैं। किसी वैष्णव को जीव हिंसा नहीं करनी चाहिये। द्वारका के कृष्ण ने भी तो यही कहा था—सब जीव एक है, अमर हैं।" इनकी वाणी से निकले ये मधुमय शब्द जादू सा प्रभाव दिखाते। जिधर ये बम भोला, हर हर महादेव करते निकलते, उधर की ही ज्वाला शान्त हो जाती।

मस्जिद के पास 'अल्लाहो अकबर' के शब्दो से ये एकाएक रुक गये। कुछ पाखण्डी मुल्ला मौलवी सिरफिरे उन्हे पकड़कर मस्जिद में ले गये—इस्लाम का फरमान बताने को। "काफिरों को मारो, लूटो, भूनों, उनकी औरतों को पकड़ों, निकाह करो, कलमा पढ़ाओ।"

हथियारों से लैस करके उन्हे छोड़ दिया गया। ये सोचते—हम बम के नाम का खाते हैं, उसका नाम गाते हैं। उसी के भक्तों को मारें, काटें। जिसके हाथ का दिया खाते हैं, उसी का हाथ काटें। नही ऐसा कभी नही हो सकता।

और ये अनपढ़ फकीर, हथियारों से लैस गलियों मे घूमते, हिन्दुओं से मिलने पर कृष्ण का सन्देश कहते और मुसलमान को दोजख का डर दिखाते गश्त देने लगे।

अन्त में रक्त पिपासा शान्त हुई और ये शान्तिदूत पुनः बम भोला के गीत गाते तपस्या करने लगे। राजनीतिज्ञ और देश सेवक इनके प्रयासों से अनभिज्ञ थे। इन्होंने तो अपना कर्म कर लिया था।

लेखक—नाथूलाल गुप्त वरिष्ठ अध्यापक
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय
छीपा बड़ौद
(कोटा)

26

खाली कोने

बृजेन्द्रसिंह

उसने अभी-अभी अपनी एक रचना समाप्त की थी। रचना समाप्ति के साथ-साथ ही उसके मुख पर सन्तोष का प्रकाश चमक उठा। क्या गजब की चीज बनी है। जब प्रकाशित होगी तो साहित्यिक जगत में तहलका मच जायेगा। लोग कहेंगे काफी समय बाद एक सशक्त रचना सामने आई है। इस रचना में उसने इन्सपेक्टर विष्णु के साहसिक कारनामों का वर्णन किया था। किस प्रकार इन्सपेक्टर भयङ्कर डाकुओं से मुठभेड़ कर उन्हें पराजित करता है।

तीन घण्टे के परिश्रम से वह थक चुका था। वैसे भी रात के बारह बज चुके थे। उसने एक अंगड़ाई ली और रचना की फाइल उठाकर अलमारी की तरफ जाने लगा। अचानक ही आहट हुई। उसने चौंक कर पीछे देखा तो उसके होश उड़ गये, हाथ पांव कांपने लगे।

दरवाजे के पास ही एक व्यक्ति जिसकी आंखें दहक रही थीं, बड़ी २ मूंछें बिच्छू की तरह डंक उठाये खड़ी थीं, डकैतों की सी ड्रेस पहिने था,

कोठरी में छिपा रहा। आज मौका पाकर तुम्हारे घर में घुस आया ताकि कपड़े वगैरह बदल लूँ।"

लेखक का कलेजा हिल उठा। अपनी औरत का हत्यारा! कितना सख्त दिल है यह व्यक्ति! फिर जेल के वार्डर और सिपाहियों को भी मार आया। मौत तो खेल है इसके लिये। इससे किसी तरह पीछा छुड़ाया जाय क्या पता उसे भी ……!

आगन्तुक कह रहा था—"आलमारी और कपड़ों में कुछ नगद दाम नहीं मिले। मुझे सख्त जरूरत है।"

लेखक के चेहरे पर बेबसी के भाव आये—"नगद तो नहीं है मेरे पास इस वक्त। सम्पादक ने लिखा है कि कल साढ़े तेरह रुपये आजायेंगे। क्या करूँ? आज सारा सौदा ही उधार लाया था।"

उस गुण्डे ने पिस्तौल जेब में डाल ली थी। शायद उसे अब खतरा नहीं था या मेरी कमजोरी को भांप गया था, बोला—"तुम्हें दमे की शिकायत है? कब से है?"

"६ साल से है।"

"मैं भी दमे से पीड़ित हूँ। पहले काफी जोर था इसका। बहुत तकलीफ रहती थी। भगवान किसी को दमा न दे।"

"मैंने काफी दवायें ली हैं पर अभी तक कोई फायदा नहीं हुआ।"

"नसों का रोग है। तुमने अस्मापेक्स का सेवन किया है?"

"किया है। पर बेकार। कोई फायदा नहीं।"

"रिकल्वीन?"

"इससे क्षणिक फायदा होता है, स्थाई इलाज नहीं है। अब तो मैं सोच रहा हूँ कि आयुर्वेदिक इलाज करवाऊँ। कुछ रचनाओं के पैसे आजायें तो दवा दारू का प्रबन्ध करूँ।"

आगन्तुक ने बड़ी मृदुल आवाज में कहा—"फिर मैं तुम्हें राय देता हूँ कि सोनपत्ता बूटी का रस पिया करो। काश्मीर में पैदा होती है। मुझे

इसी से फायदा हुआ है। मेरे तो पन्द्रह साल पुराना दमा है। अब तो काफी हल्का पड़ गया है। तुम जरूर इसका सेवन करो। इलाज खर्चीला जरूर है। तुम तो अभी जवान हो, हिम्मत करो। मैं जानता हूँ, तुम गरीब हो। यह लो यह मेरे पास में एक छोटीसी सोने की डली है। तुम रखो इसे। तुम्हारे काम आवेगी। मैं अपनी जरूरत किसी अन्य तरीके से निकाल लूंगा।

यह कहकर उसने न मालूम कहाँ से एक चमकता सोने जैसा टुकड़ा करीब एक तोले वजन का निकाला और टेबल पर रख दिया। लेखक हिच-किचाया। वह बोला, "घबराओ मत, तुम्हारे पर चोरी का इल्जाम नहीं लगेगा। रखो इसे।" यह कहकर उसने फिर बाहर की तरफ झांका और बोला—"अच्छा तो फिर इजाजत दो। मैं चलता हूँ। अपने कपड़े भी वापस ले जाता हूँ ताकि तुम कहीं फंस न जाओ।"

वर्षा बन्द हो चुकी थी। वह जाने न मालूम कौन था, आलमारी में से कैदियों जैसे कपड़े निकाल कर गठरी बना हाथ में ले गया और जाते वक्त नमस्ते करना न भूला। धातु की डली अब भी मेज पर पड़ी चमक रही थी और लेखक सोच रहा था—मानव व्यवहार के वैचित्र्य के बारे में।

नाथुलाल गुप्ता
नगरपालिका के पास।
सीकर

27

भरोसा

●

वासुदेव चतुर्वेदी

शाम के पांच बजने वाले थे।

इतने में किसी की सहमी सी आवाज कानों में पड़ी "मैं अब होस्टल चलती हूं सर लेशन चैक कर लें तो प्लीज लेशन प्लान होस्टल में आकर किसी भी लड़की को दे जाइयेगा।"

पीछे मुड़कर देखा तो हमारे वर्ग की ही एक लम्बी सी गेहुंआ रङ्ग की लड़की मुझे ही इङ्गित कर कह रही थी। मैं सोच ही नहीं पाया था कि एक लड़की जिससे मेरा कोई वास्ता नहीं मुझे इस तरह आदेश दे सकती है। मैं सोचने लगा क्या उत्तर दूँ। विचार आ रहे थे और मैं उनका ताना-बाना बुनने में व्यस्त था। क्या सोच कर इसने मुझे लेशन प्लान दे जाने के लिये कहा था। क्या सोच कर वह ऐसा कहने का दुस्साहस कर गई। मैं कुछ कहूँ इसके पहले ही वह वहां से जा चुकी थी। या तो उसने सोच लिया था कि मैं चुप हूँ इसलिये मैंने उसकी आरजू को मान लिया है या फिर मैं उसका, उसकी हिम्मत का कायल हो गया हूं। ट्रेनिंग में आने से पहले मैं

सुन चुका था कि जो लड़कियां ट्रेनिंग करने आती हैं वे या तो काफी फार-वर्ड होती हैं या फिर एक्स्ट्रा ऑर्डिनरी। अपना काम निकलवाने के लिये वे हर सम्भव कोशिश कर ट्रेनिंग पीरियड में अपने साथियों को खूब उल्लू बनाती हैं और जब काम निकल जाता है तो पता बता देती हैं। यह दूसरी बात है कि ट्रेनिंग पीरियड में कई नये रिश्ते बनते हैं और बिगड़ते हैं पर………?"

मैं कॉलिज के एक कमरे की चौखट पर खड़ा सोच रहा हूँ। क्या एक कॉलिज में निकली चलती-फिरती लड़की अपने सफर में मुझे मुर्गा बनाने की गुप्त चाल तो नहीं चल गई है? मैं शतरंज के पिटे मोहरे की तरह चुपचाप खड़ा हूँ। मैं निश्चय करता हूँ, मेरा अहम् मुझे कहता है कि मैं हरगिज लेशन प्लान लेकर नहीं जाऊँगा। चाहे कुछ भी हो जाय। मैं अपने साथियों की निगाहों में नहीं चढ़ूँगा। चर्चा का विषय नहीं बनूँगा। मैं टहलने लगता हूँ। गैलेरी में किसी के पद-चाप सुनकर मुड़कर देखता हूँ तो एक अन्य लड़की मेरी ही ओर चली आ रही थी। नजदीक आते ही बोल उठी "क्या आप ही मिस्टर देव हैं?" मैं उसकी ओर मुखातिब होकर पूछता हूँ "जी कहिये क्या सेवा कर सकता हूँ?" वह सकुचाते हुए बोली "जी आपने साइकलॉजी के जो नोट्स तैयार किये हैं, एक दिन के लिये प्लीज मुझे दे दीजियेगा।"

कक्षा में मैं अपनी धाक जमा ही चुका था। सब मेरा जलवा मानने लगे थे। अब कक्षा के बाहर भी यह सब क्या? मुझे फँसाया जा रहा है अपने वाग्जाल में। मैं सोचता हूँ सचमुच मैं घिर गया हूँ कुछ समझदार और नौजवान लड़कियों के बीच। ये साइकलाजी के नोट्स लेकर कहीं मेरी साइकलॉजी तो पढ़ना नहीं चाहती?

मैं बरबस बोल उठता हूँ "जी माफ कीजिये अभी मैं नोट्स पूरे नहीं ले पाया हूँ, ज्योंही मैं ले लूंगा मुझे आपको मदद करने में प्रसन्नता होगी।"

"जी गुत्रिया ! मैं आपके भरोसे रहूँगी" इतना कहकर वह मुस्करा बिखेरती हुई चली गई । मेरे कानों में अब तक उसके वे शब्द गूंज रहे थे "मैं आपके भरोसे रहूँगी ।" मैं सोचता हूँ क्या अनजाने युवकों के भरोसे ट्रेनिंग करने निकली है । सोच रहा था वर्ष कैसे निकलेगा। कैसे पूरी हो यह ट्रेनिंग ? वर्र के छत्ते से निकली ततैया कब तक दुःख देती रहेगी ।

मैं अनमना सा होकर अपने होस्टल की तरफ कदम बढ़ाता हूँ रास्ते में चाय पीने रुकता हूँ तो छः बजकर पांच मिनिट हो चुके थे । खब मिली, मद्रास के मुख्य मन्त्री अन्नादुरै की मृत्यु हो गई है । खबर सुनकर सोच मृत्यु से संघर्ष करते हुए एक महाप्राण प्रयाण कर गया । इसी तरह जीवन में बाधाओं से संघर्ष करते हुए हम भी प्रयाण कर जायेंगे पर किसके भरोसे ?" चाय पीकर मैं अपने कमरे में आ लेटता हूँ । विचारों में डूबा हुआ मैं सोचता हूँ—बच्चे-बच्चों कैसे होंगे ? पत्नी कैसी होगी ? उन पर क्या बीत रही होगी । इतने में मस्तानी चाल से चलता हुआ मेरा रूम पार्टनर आता है और आते ही बोल उठा "क्यों प्यारे क्या बात है आजकल ? उड़ा उड़ा क्यों है ? क्या कोई तितली फँसा ली है । इतनी देर तक कॉलेज के महाते में चक्कर लगाता रहा, कोई बात तो होगी ?"

मन में आया उसे डाँट दूं, उसके प्रश्नों का माकूल जवाब दूं, फिर सोचा, आज यह कह रहा है तो कल इसी तरह अन्य भी तो कह सकते हैं । मैं उसे आश्वस्त करता हूँ । कहता हूँ, इस तरह की ऐसी कोई बात नहीं है । मेरी बात पर विश्वास कर वह भी चुप हो जाता है । थाली कटोरी उठाकर भोजन करने चले जाते हैं, जैसे कुछ हुआ ही नहीं । मैं मन ही मन निश्चय करता हूँ कि आज से इन आफतों से बात नहीं करूँगा ।

सुबह जब नींद खुली तो मेरा रूम पार्टनर जोर शोर से हो-हल्ला मचाये हुए था । वह कह रहा था "यह आकाशवाणी है या मखौल ? अन्ना-दुरै अभी तक जिन्दा हैं और रात रेडियो एनाउंस कर चुका था अन्नादुरै मर

दे।" मैं समझा था जनाब प्रौगलवी टूर्नामेंट के किसी मैच का वर्णन कर
हे हैं। पर यह तो मृत्यु से संघर्ष करते हुए कुछ घण्टों के लिए विजय प्राप्त
रने वाली बात थी। जीवन में संघर्ष करते-करते कोई मुझ पर भी हावी
होकर विजय प्राप्त न करले, इसी आशंका से आशंकित था मैं।

क्रम चलता रहा। आधा समय शान्ति से व्यतीत हो गया मैं अभी
क उन्हें *सायकलॉजी के नोट्स नहीं दे पाया हूँ।* हालांकि वह मुझे यदाकदा
म देकर पाठ्य सहायक सामग्री एवं पाठन सामग्री प्राप्त कर लेती हैं। मैं
पश्चात उसके कथन में आत्मीयता का आभास प्राप्त करता रहा। दूरिय
माप्त होती जा रही थी। ऐसा मालूम पड रहा था, मानो वह अपने हीं
रिवार की एक सदस्या हो। एक दिन उसने एक शेर सुनाया समझ नहीं पाय
क वह *किसे लक्ष्य कर कहा गया था।* मैंने उपेक्षा के भाव से उसका अन्य
र्थ न लगा, ट्रेनिंग की मस्ती का एक अङ्ग मान लिया था। कभी भी मैंने
सकी परिस्थितियों के बारे में जानने की कोशिश नहीं की थी। अब मेर
हम मुझे मरता दिखाई दे रहा था। कॉलेज की लॉन पर खडे होकर उनसे
छ मिनिटों के लिये बातचीत हो जाया करती थी। दोस्त मुझे उडी-उडी
नगाहों से देख लिया करते थे तथा अन्य साथी हमें बातें करते देख इधर से
धर निरर्थक चक्कर लगाया करते। गनीमत यह थी कि उन्होंने इसे अन्यथा
लेकर चर्चा का विषय नहीं बनाया।

वर्ष की समाप्ति पर परीक्षाएँ समाप्त हो गई तो घर लौटने की
तैयारियों के साथ जब वह अन्तिम बार मिली तो ट्रेनिंग पीरियड में मेरे
द्वारा किये गये सहयोग एवं उपकारों के लिये शुक्रिया अदा करते-करते
उसकी आंखों में आंसू छल-छला आये थे। मैं उसे संयोग मात्र कह कर सहा-
नुभूति प्रदर्शित करता हूँ, लेकिन मैंने यह भी जानने की कोशिश नहीं की कि
वह कहाँ की रहने वाली है और ट्रेनिंग में उत्तीर्ण होने पर उसका कहाँ
नौकरी करने का विचार है।

ट्रेनिंग की समाप्ति के बाद एक नये अध्याय का प्रारम्भ हुआ। स्मृतियाँ खाली स्लेट की भाँति लुप्त होती गई। घर गृहस्थी के चक्कर में कुछ याद ही नहीं आया। इसी बीच विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह से लौटने पर मेरे एक मित्र ने बताया कि कुमारी दीप्ति मेरी सफलता पर बड़ी खुश थी और दीक्षान्त समारोह के अवसर पर मेरे बारे में पूछ रही थी। अब वह कुमारी न होकर विवाहिता हो चुकी थी तथा अपने पति के साथ सुखद जीवन-यापन कर रही थी। बीते हुए क्षणों को याद किया जाय तो दर्द ही होता है और याद न किया जाय तो कोई बात ही नहीं।

ट्रेनिंग के दो वर्षों बाद मुझे किसी कार्य से जयपुर जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कुमारी दीप्ति के बारे में कोई बात मन में आई ही नहीं थी और न स्वप्न में ही यह उम्मीद थी कि वह मिल जायगी और भरोसे का अहसास करायेगी।

शाम को लगभग साढ़े छः बजे मैं सिनेमा देखकर लौट रहा था। कार्य की व्यस्तताओं से परेशान तो था ही। चाहता था काम निपटाकर आज रात की गाड़ी से ही रवाना हो जाऊँ। कदम जल्दी-जल्दी उठ रहे थे कि एक आवाज कान में पड़ी। "भाई साहब! भाई साहब!!" पीछे मुड़ कर देखा तो एक औरत अपने पति के साथ खड़ी मुझे ही आवाज दे रही है। नजदीक आकर देखता हूँ तो वह कुमारी दीप्ति ही थी उसकी गोद में एक बच्चा था जो किलकारियाँ मार रहा था। उसने अपने पति से परिचय करवाया और मचल पड़ी कि मुझे उसके घर चलना ही पड़ेगा। उसके पति ने भी जब आग्रह किया तो लाचार होकर उसके घर जाना ही पड़ा। बच्चे को मेरी गोद में डाल कर वह रसोईघर में जा चुकी थी। उसके पति [illegible] रहे थे। मैं उस अबोध बालक से मौन इशारों से बातचीत कर रहा था। यद्यपि दीप्ति में अब वह दीप्ति नहीं थी। पर उसके अन्तर में [illegible] नहीं था वह अब उसके पति के साथ सिमट गई थी पर मुझे जो भरोसा दिया था। वह भाई होने का दिया था। अनजाने ही मौन बैठा। मौन भरोसा सुन्दर हो

उठा। बच्चे को मामा मिला। मै वही भोजन करता हूँ। बच्चे के हाथ मे पाच का नोट थमा कर विदा लेना चाहता हूँ और दीप्ति आग्रह करती है रुकने का। मुझे इसकी साइक्लॉजी समझते देर नही लगी। इसके पास आखिरी हथियार था, वह भी काम मे ले चुकी। उसकी आखो मे आसू उमड आये। बरबस मेरे मुँह से निकल पडा "पगली तो नहीं हुई है, अब तो तू इसके भरोसे निश्चित है, फिर कभी आऊंगा और जी भर कर रहूँगा।"

मै लौट आया पर क्या मैंने कहा वह सही है? यह सोचता हूं तो [illegible]

बिठाकर वह सब वर्णन किया है और उस आखों देखे हाल को अलगोजा हू-ब-हू सुना रहा है। और मैंने उसे झकझोरते हुए कहा, 'यार कुछ कहो तो रास्ता कटे।' तो तब वही किस्सा उसने गुनगुनाना शुरु कर दिया, किन्तु कुछ दूर पर ही उसने वह अधूरा छोड़ दिया। कहने लगा, सुरत की माया है। जब ब्रह्मांड में सुरत बिसर जाय तो सब चौपट हो जाता है। और आजकल इन किस्सों की वकत भी क्या। अब तो 'रेडियो' की माया है। 'वखत' तो था जब कि कभी किसान राजा नल के किस्से को गुनगुना कर बीघों खेत जोत डालता था पर भैया आज उसकी मेड़ पर 'रेडियो' बजाता है जिसमें नगी औरतों की आवाज भरी हुई है।

जब मेरे पांव थकने लगते तो मैं कुछ सुस्ताने को आरजू करता, तब तपाक से वह बोल उठता, 'वाह भईया ई दुकड़िया, बू सेन और बू गाम। चलता जोगी और बहता पानी ही अच्छे लगते है। सुस्ताओ तो शरीर अकड़ जाय। शरीर अकड़ जाय तो जानते हो काया की कीमत छदाम भर नहीं मिलनी। फासलों पर तो चलते ही रहना ठीक होता है। अब तो गाम पहुंच कर ही इकट्ठे सुस्ताएंगे। फिर आश्चर्ययुक्त बोला, 'और सुनो गजब की बात, हैना, गुन्डा गाम को नहीं गिनता और गाम गुन्डा को नहीं।

'क्या गजब हो गया ?' मैंने आश्चर्य से पूछा।

'हो तो कुछ नहीं गया पर रोज जो हो रहा है या होता रहेगा वह क्या कम है। 'न्याव' बिकता है सागभाजी की तरह और लठिया पुजती है रामायण की तरह। भारवीर की सौगन्ध, दो दिन का राज मुझे मिल जाय बस, सब एकमएक कर दूं। दूध का दूध पानी का पानी। मजाल है कोई अनहोनी हो जाय। आखिर सात गाम के चौधरी की औलाद हूं हमारी ठकुराई आज तक पुजती है। और हैना, दर्जा चार का जमाने में पास किया था वखत में अंग्रेजी हिन्दी से बहुत ऊंची थी और हिसाब किताब में चकरवर्ती ब्याज, पौना, डयौढ़ा और महाजनी हिसाब—यह सब घोटकर पिलाया जाता था तब।'

मैंने बीच में ही टोक कर कहा, 'यार वह गजब क्या हो गया, पहले उसे तो सुनाओ।'

'हां भैया भूल गया। मैंने कही थी न कि सुरत की माया है। ब्रह्मांड में सुरत बिसर गई तो सब चौपट हो जाता। हां तो, वह चमेली, हैना वही जिसने तेजी बनिया से ब्याह कर लिया..................

'हां फिर'

'फिर हां, वह निरन्ना चमार..................

'पर तिरखा को मरे तो पूरे दस साल हो गये'..............

'सुनो तो सही। बीच में ही बात काट दी। तिरखा भी क्या थ भैया''''कोई देवता था। जात का चमार, पर ज्ञानी परज्ञानी पहुंचा हुआ सर्प-देवता का इलाजी नामी गामी। झाड़ फूंक में नम्बर अव्वल। हाथ में सिफत थी भैया। पांच कम अस्सी बरस में परलोक-वासी हो गया विचारा। वा जमाने में नीच जात की गत भेड़ बकरियों से भी बदतर थी पर तिरखा ठहरी बड़ो मौजी और मनौवो मगन। बस्ती की गैर मंजूरी से रथ खरीद लियो। अजी रथ क्या था, कोई देवलोक की अप्सरा गाड़ी थी मला। दो मतवारे बैल खीच रहे थे। और, हैना, बैलों के पैरों मे बजने पायजेब, पीठ पर कढ़ी हुई भूल, गले मे पीरी पिछौरी और सींगों मे लाल दुपट्टी। रास मखमली रस्सी की। गले में नज़र गुज़र से बचने के लिये काले धौरे गंडे और नई घुंघरावली''''टन टनाटन टन। ओहो, जोड़ी देखते ही बनती थी।'

और में चुपचाप सुने जा रहा था किन्तु मेरी दबी हुई खीज जो बेमतलब बातों की भीड़ मे राह टटोल रही थी, आखिर उभर आई और मैंने खीजकर कहा, आखिर सीधी बात से टेढ़ी-मेढ़ी बातों में उलझना मूर्खता है। तुम्हें मुझे सिर्फ इतना बताना है कि आखिर तिरखा चमार और चमेली की क्या कथा है जिससे गजब हो गया और तुम, यदि तुम्हें हिन्दुस्तान का शहन्शाह बना दिया जाय तो सब एकमएक करदो। सिर्फ न्याय की खातिर।

मेरे इस प्रश्न पर अब वह कुछ गंभीर होगया किन्तु उसकी डगें अब तेज हो चुकी थी। मैं भी अपने कदमों को जैसे तैसे उसके साथ देने लायक बना रहा था। कुछ देर चुप्पी रही किन्तु मैंने फिर वही प्रश्न दोहराया तो अलगोजा उसी गम्भीर मुद्रा में बोला, भैया, वह रही ठूकरी, गांव की ठूकरी बेचारी चमेली। अब तो उसे एक ही चाह है, वह भी सिर्फ एक बालक की। पर तेजी के बालक नही होगा। उसकी मिल्कियत का मालिक कभी राज ही होगा। अन्याय और बेईमानी से कमाया हुआ धन कभी नही फलता। पर चमेलो ने तो किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा।

वह फिर चुप हो गया। मुझे उसकी यह उलझी बात अच्छी नही लग रही थी। फिर भी मैंने कहा, "अच्छा फिर ?"

'फिर क्या ? और ठहाका मारकर अपनी गंवारू हंसी में हंसने लगा। फिर बोला, भारपीर के फकीर का गंडा मशहूर है। अला बला सब दूर।

जो मागो वही मिलता है। फकीर क्या है भैया, कोई फरिश्ता है—फरिश्ता। एक दूसरे में उलझे उसके लम्बे लम्बे बाल, लम्बा ही रग बिरगी पत्तियो का बना कुर्ता और गले मे काच की मोटी रग बिरगी मालाओं वाला फकीर। पिछले माह शमशान के अघोरी बालानन्द से उसका झगड़ा होगया। फकीर ने उसे मना किया था कि सट्टा बताकर गाम में मतलब की भीड़ वह इकट्ठी न किया करे किन्तु वह नही माना। तब, हैना, फकीर ने ऐसा जोग दिखाया कि बालानन्द अघोरी भागते ही बना। तब तो फकीर ने गाम के चारो कोनो को बाध दिया है। और हा, चमेली ने भी तो उसी फकीर का गंडा बन्धवाया है।

धूप अब आगे खिसक चुकी थी किन्तु अलगोजे की पहेली अभी अनबूझी ही मेरे साथ थी। मैंने पीछे मुड़कर देखा, एक लम्बा रास्ता मुझसे छूट चुका था किन्तु अलगोजे के प्रति जिज्ञासा तो निरन्तर बढती ही चली जा रही थी। अबकी बार मैंने कड़ाई से कहा, 'पहेली बुझाना बन्द करो अलगोजा, अब खुलासा बताओ कि आखिर चमेली, तेजी और तिरछा की कहानी हकीकत मे क्या है?'

'हकीकत' वह फिर हस दिया। यू रास्ते मे जितनी बार वह हसा, शायद यह हंसी उन सबसे विपरीत थी। इस हसी मे शायद स्पष्ट भाव था कि जो कुछ वह कह रहा है या कहा है, वह तो निरा मनोरजन था, और तब अन्त मे उसने कहा, लो यह रहा वह गाव, चार छह भौंकने वाले कुत्तो का गाव। गर्मी के मौसम का आराम लेता हुआ गाव।"

और सचमुच ही तब बच्चे चीख रहे थे। मास्साब आगये। मास्साब आगये।

अलगोजे ने मुझसे विदा लेते हुए कहा, मास्टर भैया गर्मी का विकट रास्ता कट गया न। मेरी भाबी चमेली के मजाक से यह रास्ता कट गया।

चन्द्रभान भारद्वाज
पोद्दार हायर सैकेण्ड्री स्कूल
गाधी नगर जयपुर

●